श्रीबालकृष्णपुस्तकालयकी विक्रेय साम्प्रदायिक पुस्तकें।

संस्कृत

श्रीबालकृष्ण चम्पू	४)
अणुभाष्य पञ्चटोका सहित ...	३)
श्रीसुबोधिनी प्रथमस्कन्ध ...	२॥)
,, द्वितीयस्कन्ध ...	२)
वादावलि	
वेदान्तचिन्तामणि	१।)
भक्तिहंस	१)
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद. ...	।=)
सिद्धान्तसिद्धापगा	।=)
निर्णयार्णव	।=)
यमुनाष्टक श्रीपुरुषोत्तमजी ...	।)
यमुनाष्टक श्रीहरिरायजी ...	।)
बालबोध	।)
,, श्रीदेवकीनन्दनजीकृत	।)
सिद्धान्तमुक्तावलि	।)
सेवाकौमुदी	=)
दर्शनादर्श	=)
स्तुतिपारिजात	=)
व्याख्यानरत्नावलि	=)

हिन्दी तथा गुजराती

वल्लभाख्यान (व्रजभाषा) ...	४॥)
शुद्धाद्वैतदर्शन (प्रथमभाग हिन्दी)	॥=
द्वि. भाग हि.	॥=)
मराठी प्र. भा.	॥=)
सेवाकौमुदी (हिन्दी) ...	।≡)
शुद्धाद्वैतसिध्दान्तसार (हिन्दी)	।)
शुध्दाद्वैतसिध्दान्तसार गुजराती	।)
न्यासादेश (हिन्दी) ...	=)
गुजराती	=)
गीतातात्पर्य (हिन्दी) ...	।)
गुजराती	।)
गीता–भगवध्दर्मबोधिनी गुजराती टीका ...	१।)

पुस्तक मिलनेका पता

१ **श्रीबालकृष्णपुस्तकालय**, बडामन्दिर भूलेश्वर, **मुम्बई.**

२ **चुन्नीलाल बुकसेलर**, बडामन्दिर, ३ रा भोईवाडा, **मुम्बई.**

३ **पुष्टिमार्गसिद्धान्तकार्यालय**, बडामन्दिर, भूलेश्वर, **मुम्बई.**

४ **श्रीविट्ठलनाथ पाठशाला**, मथुरेश मन्दिर, **कोटा.**

श्रीशः शरणम्

षोडशग्रंथ.

व्रजभाषान्तरसहित.

अनुवादक,

भट्टश्रीरमानाथशर्मा.

संवत् १९९४.

तृतीयावृत्ति.

२०००

श्रीवल्लभाब्द ४६०.

ठिकाणा— श्रीबालकृष्ण पुस्तकालय, बडामंदिर–बाम्बे.

षोडशग्रंथ.

व्रजभाषान्तरसहित ।

गोस्वामिभूषण

श्री १०८ श्रीगोकुलनाथमहाराजकी

आज्ञानुसार—अनुवादक और प्रकाशक

देवर्षिभट्टश्रीद्वारकानाथात्मज

भट्टरमानाथशर्मा

तृतीयावृत्ति.

मुद्रालय वैश्वानर.

इस पुस्तकके पुनः प्रकाशनका अधिकार स्वाधीन रक्खा हैं.

सन् १९३८. सं० १९९४.

Published by Pandit Ramanath Shastri, Third Bhoiwada, Badamandir, Bhuleshwar, Bombay.

Printed by Damodar Ratansi Banatwala at the "Vaishvanar" Press, 163, Panjarapole Road, Bombay.

प्रस्तावना.

वाग्देवतावतार श्रीमद्वल्लभाचार्यने वेद गीता और श्रीमद्भागवत आदि भगवच्छास्त्रनके विस्तृतसिद्धान्तनको संक्षेप करकें यह पद्यरूप '**प्रकरण-ग्रन्थ**' बनाये हैं। इनको 'षोडशग्रन्थ' यह नाम कबसूं प्रचलित भयो सो अभीतक निश्चय नहीं होय है। कदाचित् इनके प्रतिपाद्यविषय हर-एक वैष्णवकूं प्रतिदिन याद राखवे लायक हैं और वे सोलह मुख्य हैं यों समझके राख्यो होय ऐसो अनुमान मात्र होय हैं. अस्तु तथापि ये ग्रन्थ अमूल्यरत्न हैं यामें तो कोई तरहको सन्देह नहीं है।

या ग्रंथ पै अनेक आचार्यनने कितनीक संस्कृतमें टीकाऐं लिखीं हैं. जिनके देखवेसूं प्रायः बहोतसो संप्रदायको रहस्य मालुम होय जाय है. भाषामेंभी याकी कितनीही टीका होय चुकी हैं. परन्तु तिनमें कितनीक टीका व्रजभाषाकी च्युतिसूं नहीं जैसी होय रहीं है. यद्यपि उनमें विस्तार है तथापि भाषामें विपर्यास होय जायवेसूं मूलकोभी पतो नहीं लगे है. या व्रजभाषान्तरमें प्रायः यह बहोत ध्यान राखो हे के मूलको अर्थ सरल रीत्या समझमें आयसके अन्वयमें प्रायः अपेक्षित पद धरदीने हैं. और समासभी जहांतहांके विशदपदनको करदीनो है. तासूं विशेषसर-लता होयवेकी संभावना है. श्रीमद्वल्लभाचार्यनकी वाणी अनुग्रहैकगम्य है यह ग्रन्थनके देखवेसूं मालुम पडे है. किन्तु संस्कृतटीकानकेद्वारा जो कछु आशय समझमें आयजाय वहभी केवल उनको अनुग्रह है. यासूंही या भाषान्तरमें भी मनुष्यसुलभ प्रमादसूं कचित् स्खलित रह गये होंय तो सत्पुरुषनकूं चहिये के सुधारकें काम चलावें. या जगत्में सर्वपरितोष होनो कठिन है सो युक्तभी है क्योंके—

गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि भवेदेव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।

अनुवादकर्ता.

॥ श्रीहरिः ॥

तृतीय संस्करणकी भूमिका और

षोडशग्रंथनको आशय !!

श्रीमद्वल्लभाचार्यके सब सिद्धान्त वेदादि समग्र भगवच्छास्त्रनके गूढ आशय हैं। किन्तु वे बडे गम्भीर और विस्तारवारे हैं। तथा भाष्य सुबोधिनी आदि ग्रन्थनमें छिपे पडे हैं तासूं उनकूं निकासवेमें साधारण बुद्धिवारेनकूं अतिकष्ट पडे यासूं श्री आचार्यनने कृपाकरके उन गूढ सिद्धान्तनकूं सोलह ग्रंथनद्वारा प्रकट कर दिये हैं। विषयके अतिगम्भीर होयवेसूं तथा बहूतसे विषयकूं थोडे अक्षरनमें ले आयवेसूं भाषा कठिन हो गई है। वास्तवमें श्रीमद्वल्लभाचार्यकी वाणी अतिसरल है किन्तु इन दोकारणनसूंही कहुं कहुं कठिन होय जाय है। तासूंही तद्वंशज श्रीपुरुषोत्तमजी प्रभृति आचार्यनने अनेक टीकाऐं करीं हैं। और गम्भीराशयवाणी होयवेसूंही टीकाकारनके आशय कहुं कहुं एक दूसरेसूं जुदे पड गये हैं। तथापि वे सब अर्थ आचार्य वाणीमेंसूं निकसें हैं।

यमुनाष्टकको आशय।

यमुनाष्टकमें श्रीयमुनाजीके स्वरूप और माहात्म्यको वर्णन हैं। श्रीयमुनाजी व्रजजननके चतुर्थयूथकी स्वामिनी हैं। प्रभुको जो स्वरूप और उनमें जो गुण हैं वेही श्रीयमुनाजीमें हैं। प्रभुकी परमप्रिया हैं। तासूं यमुनाष्टकके पाठ-करवेसुं शरीरकी शुद्धि सेवाको अधिकार, नवीन दिव्यदेहको प्राप्ती तथा प्रभुस्नेहकी प्राप्ति होयहै।

बालबोधको तात्पर्य।

या जगत्में अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सबही मनुष्यनने अलग अलग पुरुषार्थ समझ राखे हैं। कोई पैसाकूंही पुरुषार्थ मानें हैं। कोई धर्मकूंही

पुरुषार्थ माने हैं। कोई कीर्ति फैलवेकुंही पुरुषार्थ माने बैठे हैं। किन्तु श्रीवल्लभाचार्यके सिद्धान्तमें चारों पुरुषार्थ (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) मान्य हैं। मुख्य दो—काम और मोक्ष पुरुषार्थ हैं ! सुखकोही नाम काम है। और दुःखके अभावकुंही मोक्ष कहें हैं। सुखको साधन अलौकिक कर्म है—धर्म है। और धर्मको साधन अर्थ हैं तासूं ये दोनोभी पुरुषार्थ हैं। जीवकूं जाकी चाहना होय वाकूं पुरुषार्थ कहें हैं। पुरुष समय समय पै धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोनकूं चाहें हैं तासूं ये चारों पुरुषार्थ है। जगत्में ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीन फलप्रद देवता हैं। किन्तु ब्रह्मा सृष्टिकार्यमें लगे रहें हैं तासूं शिव और विष्णु ये दोनो पुरुषार्थ देवेवारे हैं। विष्णु मोक्ष दें हैं। शिवजी भोगको दान करें हैं।

मोक्षशास्त्रभी चार प्रकारके हैं। दो शास्त्र (सांख्ययोग) अपने किये साधनसूंही पुरुषार्थ देवेवारे हैं। और दो (वैष्णव शैव) शास्त्र दूसरेके आश्रय लेवेसूं पुरुषार्थ देवेवारे हैं।

ये सब रहतेभी भगवदीयनकूं तो परब्रह्म श्रीकृष्णही सेव्य और आश्रय लेवे लायक हैं।

सिद्धान्तमुक्तावलिको आशय।

नवधा भक्ति करनो यह जीवको मुख्य धर्म है। वह नवधा भक्ति पुष्टिमार्गीयतनुजा सेवामें आयजाय है। सो तनुजा सेवा वित्तजासहित करनी ऐसो सिद्धान्त है। अपने वित्तके अनुसार धनको प्रभुके अर्पण करनो यह वित्तजा सेवा है। अपने शरीरसूं मन्दिर मार्जनसूं लेकें शयनपर्यन्त सब सेवा करनी तनुजा सेवा है। श्रद्धापूर्वक सब पदार्थनमें प्रभुकी तथा प्रभुसंबंधी भावना करके जो नित्य तनुजा वित्तजा सेवा करे तो प्रभुमें प्रेम होयकें चित्तकी तन्मयता प्राप्त होय। यह सेवा मुख्य और फलात्मिका है।

यदि ऐसो न बन सके तो सब जगतकूं अपने आत्माकूं अक्षर ब्रह्मात्मक प्रभुको लीलास्थान मानतो प्रभु प्रेमके लिये तनुजा वित्तजा सेवा करे। वाकूं चिरकालमें अहंताममतानाश तथा सर्व पदार्थ अक्षर धाम है ऐसोज्ञान होय हैं। तीसरी कक्षा ये है जो शरीर पुत्र धन आत्मा प्रभृतिमें अभिमान

होय वह जो प्रभुसेवा करे तो सेवाके उपयोगी पदार्थ न मिलवेसूं दुःख पावे क्लेश सहन करतोभी, प्रतिबंधनकूं दूर करवेकी इच्छासूं श्रीभागवतश्रवण-वाचनद्वारा लीलाविशिष्ट प्रभुको चिन्तन करतो जो सेवामें लगो रहे तो वाकी संसारासक्ति दूर हो जाय है। और सिद्धि प्राप्त होय है।

जाकूं प्रारब्धवश प्रभुकी सेवा करतीसमय लौकिकासक्तिद्वारा विघ्न होंय वह क्लेश भोगकेंभी सेवाको त्याग न करे। फलविलम्ब निवृत्ति तथा प्रतिबंन्धनिवृत्ति होयवेके लिये श्रीमद्भागवतको आराधन करतो जहां प्रभु प्रेरणा करें वहां रहके प्रभुकी पूजा सेवा उत्सव मंडानप्रभृति उत्साहके भगवत्कार्य करतो रहे। और ऐसेको वैदिकमर्यादामें विशेष अभिनिवेश रहतो होय तो गंगातीरपै रहके श्रीभागवतको पारायण करतो रहै। प्रभु मोकूं ज्ञानमार्गमें राखनो चाहें हैं एसें सन्तोष राखे।

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदको तात्पर्य।

पुष्टि, प्रवाह, और मर्यादा, इन भेदनसूं तीन मार्ग जुदे जुदे हैं। प्रभुके अनुग्रहकूं पुष्टि कहें हैं। वेदमार्ग मर्यादामार्गकूं कहें है। और दुनियाके देखादेखी चलवेकी जामें प्रवृत्ति होय वो प्रवाहमार्ग है।

प्रभुनें अपनें भक्तनकूं सरल भक्तिमार्गको उपदेश कियो है तासुं मालुम पडे है के अनुग्रहमार्ग जुदो है। वेदमें साधनके नियम करे हैं तासूं वेदमार्ग जुदो है। और गीतामें तथा वेदमें 'पेदा होनो मरनो' कह्यो है तासूं प्रवाहमार्ग जुदोही है। पुष्टि और मर्यादामार्गको अन्त हैं क्योंकि उन मार्गमें प्रभुमें किंवा अक्षरमें सायुज्य मिले है। किन्तु प्रवाहमार्गको अन्त नहीं हैं ये तो जहांतक सृष्टि रहैगी वहांतक चलतोही रहैगो। पुष्टिमार्गमें मुख्य साधन प्रभुको अनुग्रह है मर्यादामें वेदोक्तसाधन साधन हैं। और प्रवाहमें काम्यकर्म, तथा असत्कर्मसाधन हैं, पुष्टिमार्गमें प्रभुस्वरूपही फल है। मर्यादामें मोक्ष फल है। और प्रवाहमें भ्रमणही फल है।

पुष्टीमार्गीय जीवमें और प्रभुमें यद्यपि स्वरूपचिन्ह और गुणआदिसूं भेद नहीं है तोभी अभेदमें लीला नहीं होय सके हैं तासूं लीला होय सके इतनो फरक तो प्रभु राखेंहीं हैं। और लीलाअवस्थामें स्वागत भेदतो राखनोही पडे

है । वाहीसूं आचार्यनने प्रभुमें और जीवमें तादात्म्यसंबंध राख्यो है । अभेद-जो भेदकुं सहन करतो होय तो वो संबंध तादात्म्य कहो जाय है ।

पुष्टीमार्गीय जीव दो प्रकारके हैं, शुद्धपुष्टिमार्गीय ओर मिश्रपुष्टिमार्गीय । शुद्धपुष्टिमार्गीय जीव अतिदुर्लभ हैं । मिश्रपुष्टिमार्गीय अनेक प्रकारके हैं सुक्ष्ममें तीन प्रकार और विस्तारमें ९ तथा ८१ होयकें अनंत भेद होय जांय हैं ।

पुष्टिमार्गीयजीवनके लीलासहित प्रभुही फल है । प्रभु अनन्तस्वरूप है । तासूं पुष्टिमार्गीयजीवनकूं इनके स्नेहतारतम्यसूं स्वरूपतारतम्यद्वारा प्रभुभी प्रकट होयकें फलदान करें है । श्रीकृष्ण, राम, नृसिंह और मर्यादामार्गीय-जीवभी ज्ञानी, भक्त, ज्ञानिभक्त आदिभेदनसूं अनेक प्रकारके हैं । इनके साथ-नभी वहुत है । इनकुं फल अक्षरसायुज्य (ब्रह्ममें ब्रह्म होयकें मिलजानो) अथवा पुरुषोत्तमसायुज्य होय हैं ।

पुष्टिमार्गीय उत्तम जीव, किंवा ज्ञानमार्गीय उत्तम जीवनकूंभी लोकरक्षार्थ वेदशास्त्रोक्त कर्म अवश्य करने पडे हैं । तथा पुष्टिमार्गीयजीवनमें जो कछू मर्यादाके धर्मनको आचरणआदि सुनवेमें आवे यह सब लोक रक्षार्थ समझनो एसेंही कर्मादिभी समझनो । और जो सब मार्गनसूं थोडोथोडो संबंध राखवे-वारे तथा पंच देवपूजकप्रभृति जीव, ये सब चर्षणीशब्द (भ्रान्त) सू पुकारवे लायक हैं । इन्हे खंडशः फल मिले है किन्तु ये सब प्रवाही जीव जैसेही हैं ।

काम्यकर्म करवेवारे जीवभी प्रवाहीजीव जैसेही हैं । क्योंकि इन दोनो-नको जन्ममरणादिचक्र पूरो नहीं होय है । दोनोतरहके ये जीव प्रवाहकें भेदही जाननो मुख्य प्रवाही जीवभी अनन्त हैं ।

'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः' । या श्लोकसूं प्रभुने गीताजीमें इन आसुर जीवनको वर्णन कियो है ।

आसुर जीवनकेंभी अनेक भेद हैं । उनमें मुख्यभेद दो है । अज्ञ आसुर और दुर्ज्ञ आसुर । भगवानने जिनको गीतामें वर्णन कीयो है वे दुर्ज्ञ आसुर है क्योंकि इनकों ज्ञान स्वरूपतः दोषवारो है । और जीव जो इनके संगसूं आसुर होगए हैं वे अज्ञ आसुर है ।

अज्ञ आसुर कभी २ भगवदिच्छासूंबी आसुरकुलमें उत्पन्न होंय हैं । वे वास्तवमें आसुर नहीं हैं । वास्तवमें वे भक्त अथवा ज्ञानी होय हैं किन्तु प्रभुकी क्रीडेच्छासूं वे वहां उत्पन्न होंय हैं । एसे जीवनकूं भगवदीयनके संगसूं किंवा प्रभुके स्वरूप किंवा स्मरणके द्वारा मोक्ष मिले है ।

सिद्धान्तरहस्यको तात्पर्य ।

श्रीमद्वल्लभाचार्यके सिद्धान्तनमें 'सिद्धान्तरहस्य' ग्रंथ अपूर्व है । यद्यपि या ग्रंथकी बात सम्पूर्ण भक्तिशास्त्रनमें अच्छीतरह कही हैं किन्तु कोई आचार्यनने याकूं ऐसी तरह पृथक् करके ग्रंथरूपमें कही नहीं है । केवल श्रीमद्वल्लभाचार्यश्री-नेही ये बात प्रकट करी है । शास्त्रमें यह बात छिपी पडी है तासूंही याकूं रहस्य ये नाम दियो है । भक्तनके लिये यह बात अवश्य जानवेलायक हैं, अतिउत्तम है, यदि ये रहस्य प्रकट न होतो तो भक्तिमार्गही व्यर्थ होय जातो तासूंहि 'सिद्धान्तरहस्य' ये नाम कह्यो है । अनधिकारीनके हृदयमें ये सिद्धान्त जमे नहीं हैं तासूंभी 'रहस्य' शब्द याके संग लगायो हैं ।

सहज आदि पांच दोष लिंगशरीर और तत्संबद्ध होयवेसूं जीवकें संग लगे हैं । तामेंभी सहज दोष भारी है । याने जीवके स्वभावकूं कछुको कछु कर-दीनो है । सेवामें अथवा भक्तिमें स्वभावको काम प्रतिपल पडे है । या स्वभा-वकूं सुधारे बिना और सहज दोषकूं निवृत्त किये बिना सेवामार्ग तथा भक्ति-मार्ग व्यर्थ सो हो जाय है । थोडोभी विचार करवेसूं ये बात स्पष्ट समझवेमें आजायगी ।

देहमें आत्मभाव करलेनो ये अहंता है । अपने आपकूं स्वतंत्र मान लेनो ये भी अहंता है । मैं करवेवारो हूं ऐसें मान बैठनो येभी अहंता है । यह दोष आयवेसूं ममतादोषभी जीवमें आय जाय है । देहसूं संबंध राखवेबारे स्त्रीपुत्र गृह आदिपदार्थ सब प्रभुके हैं भगवदीय हैं । किंतु देहमें अहंभाव होयवेसूं जीव भवदीय पदार्थनकूं अपने समझवे लगे है । याकोही नाम मम-ताहै ये दो दोष प्रधान हैं, और सहज हैं । ये दोष अनादि हैं, और जीव-पनेके संगही आये हैं तासूंही इनकूं सहज कहे हैं ।

इन सहज आदि दोषनकूं दूर करवेको एकही उपाय निवेदन तथा सम-र्पण है । यद्यपि इन दोषनकी सर्वथा निवृत्ति क्रमिक अभ्याससूं होयगी तथापि

जादिनसूं इन दोषनकी निवृत्तिके उपायको गुरुके द्वारा प्रारम्भ कियो वा प्रारम्भकोही नाम हैं ब्रह्मसंबंध ।

ब्रह्मसँबंधको जो मंत्र है वामें यह बात समझाई है के सपरिकर जीव ब्रह्मको है (प्रभुको है) श्रीकृष्ण जीवके उपजीव्य, स्वामी, अंशी, अतएव सेव्य और सर्वस्व हैं, और जीव श्रीकृष्णको उपजीवक, दास, अंश अतएव सेवक है। क्रीडापरिकर या जगत्में प्रभूने जीवकूं सेवार्थही बनायो है। प्रभु और आपमें जो ये स्वामिसेवकसंबंध है याकूं जीव, अहंता ममता दोष आयवेसूं भूलगयो है। या ब्रह्मके और जीवके संबंधकूं याद दिवायवेवारे मंत्रकूं ब्रह्मसंबंध मंत्र कहें हैं। प्रतिदिन प्रतिपल या संबंधनकूं स्मरण करते रहनो। ये स्मरण जब दृढ होय जाय तब वे दोष सर्वथा निवृत्त होय जांय हैं। जिनकूं याके दानकरवेको काम पडे है वे याको जपभी करें हैं किन्तु वैष्णवनकूंतो याके अर्थको स्मरण करते रहनो चहिये ।

इन सब बातनकूं दृष्टान्त और युक्तिनके द्वारा या सिद्धान्तरहस्य ग्रंथमें समझाई हैं। सिद्धान्तरहस्य ग्रंथको विवेचन कियो जाय तो षोडशग्रंथके बराबरको विस्तार होय जाय तासूं ये बात लेखमें नहीं व्याख्यानद्वारा सुनवेकी हैं। आगें या ग्रंथकूं कहा सोलह ग्रंथनकं ही संस्कृतके सिवाय भाषामें लोकोपकारक रीतिसूं कोई विद्वानने समझाए नहीं ऐसो मालुम पडे है अन्यथा ब्रह्मसंबंधके सिद्धान्तको लोग स्वयं वैष्णववर्गमें होयकेंभी दुरुपयोग न करतें। आचार्यनकी वाणी ब्रह्मसूत्रनको तरह संक्षिप्त और गम्भीर है। अच्छीतरह विस्तारसूं समझाये बिना समझमें नहीं आवे हैं।

नवरत्नको तात्पर्य ।

या ग्रंथमें नो श्लोक रत्नकी तरह हैं तासूं याको नाम नवरत्न है ।

जीवस्वाभव ऐसो है जो अनेक समय अनेक तरहको चिन्ता होय हैं। 'मेरी लौकिकी गति न होय जाय ऐसें जो चिन्ता होती होय तो वा समयमें यह विचार करनो। जो मेरे प्रभुको स्वभाव अनुग्रह करवेकोही है वे अपने धर्मको परित्याग कभी नहीं करेंगे।

यदि योगक्षेमके विषयमें चिन्ता होती होय तो वा समयमें यों विचार करनो कि मैने सपरिकर अपने आपको प्रभुकूं निवेदन कियो है और प्रभु सब जगत्के मालिक हैं सबके अन्तर्यामी हैं सब जाने है अपनी इच्छासूं सब करेंगे यामे मेरे चिन्ता करवेसूं कछु प्रयोजन नही है।

एसें अन्यविनियोगमें, आत्मनिवेदनके स्वरूपाज्ञामें, निवेदनस्वीकारमें, प्रभ्वर्थ अन्यविनियोगमें, लौकिकासक्ति वैदिकासक्ति करायवेमें, सेवारीति भोगरागप्रभृतिमें, दुःखादिके समयमें यदि चिन्ताएं होती होंय तो विचारके द्वारा उन चिन्तानके दूर करवेके उपाय या नवरत्नग्रंथमें बताये हैं।

अन्तःकरणप्रबोधको तात्पर्य ।

या ग्रंथमें विशेष करके अपने अन्तःकरणकूं समझायवेकी बातें कहीं हैं। वैष्णवनकूंभी यामें ग्रहण करवेको ये है के कोईसमय असावधानतासूं यदि प्रभुको अपराध बन जाय तो अतिशय दैन्यपूर्वक क्षमा करा लेनो और अपने अंतःकरणकूं ऐसें समझा लेनो।

विवेकधैर्याश्रयको तात्पर्य ।

या ग्रंथमें विवेक धैर्य और आश्रयको निरुपण है। विवेकसूं कामनावेशके समय दृढता बनी रहे हैं। और धैर्यसूं दुःखके समय दृढता बनी रहे हैं। इन दोनों तरहकी दृढतासूं प्रभुको आश्रय सिद्ध होय है।

विवेक—मनुष्यकूं कोई न कोई कामना अवश्य रहे है। मनुष्य कामनामय है। कोईतरहकी कामना हृदयमें उत्पन्न होय और वो यदि पूर्ण न होय तो प्रभुकी भक्ति शिथिल होय जाय है। ऐसे समय विवेकसूं काम लेनो। 'प्रभु सर्व समर्थ हैं, कोई बातकी प्रभुके यहां कमी नहीं है फिरभी जो प्रभु मेरी इच्छा पूरी नहीं करे हैं यामें अवश्य कोई कारण है। प्रभु मेरो हितही करें हैं। मेरो इच्छापूर्ति न करवेमेंभी प्रभुने कोई मेरो हितही विचार्यो है। जब प्रभुकी मेरी इच्छापूर्ति करवेकी स्वयंइच्छा होयगी तब अपने आप करेंगे' ऐसें विवेकद्वारा दृढता बनी राखनी। अभिमान कभी न करनो आग्रह नहीं राखनो। आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःखनकूं दृढतापूर्वक सहन करनो प्रभुके ऊपर कभी अविश्वास नहीं करनो। प्रभुकूं अथवा कोई अन्य

देवसूं कोई कार्यमें प्रार्थना न करनी चाहिये। लौकिक अलौकिक सब कार्यनमें एक प्रभुकूंही रक्षक और आश्रय समझने। अन्यको आश्रय न करनो।

कृष्णाश्रयको तात्पर्य।

या कृष्णाश्रयमें जीवको एक प्रभु श्रीकृष्णही रक्षक है यह प्रतिपादन कर्यो हैं। लोक, देश, गंगादितीर्थ, सज्जनलोग, मंत्रआदिशास्त्र, व्रतादिकर्म, सब कलिके दोषसूं दुष्ट होगये है। तासूं ऐसे समय श्रीकृष्णही रक्षा करवेवारे हैं। श्रीकृष्णके सिवाय श्रेष्ठ कोई देव नहीं है और जीव अतिदीन हीन हैं तासूं प्रभुही रक्षक हैं।

चतुःश्लोकीको तात्पर्य।

या ग्रन्थमें चार श्लोकनसूं पुष्टिमार्गीय चार पुरुषार्थनको वर्णन है। भक्तिमार्गमें प्रभुसेवा धर्म है। श्रीकृष्णही धन है। प्रभुके मुखारविन्दको दर्शनही काम है। और प्रभुके वास्तव दासनमें गणना होय बस येही मोक्ष है! ये वातें चार श्लोकनमें संक्षेपसूं कहीं है।

भक्तिवर्धिनीको तात्पर्य।

सब दैवीजीवनके हृदयमें प्रभुस्नेहको बीज होय है। जो कालकर्मवस्तुके विघ्नसूं नष्ट नहीं होय है। तिरोहित सो तो हो जाय है। वाको पुनः प्रकटन करवेके लिये और प्रकट होय तो दृढ करवेके लिये तथा बढायवेके लिये या भक्तिवर्द्धिनीग्रंथमें उपाय बतायो है।

गृहमें रहकें यदि अधिकारी होय तो अपने अपने वर्ण और आश्रमके धर्मनकूं सेवाके अनवसरमें अवश्य करतो रहै और मुख्यरीतिसूं प्रभुकी तनुजा वित्तजा (नवधा भक्ति) करै। या रीतिसूं यदि सेवाश्रवणादि करतो रहै तो कितनेही कालमें बीज दृढ होयकें प्रेम, आसक्ति और व्यसन ये फलप्राप्ति होय हैं।

प्रभुमें प्रेम होयवेसूं जगद्वर्ती पदार्थनमेंसूं स्नेह आपने आप जातो रहे है। आसक्ति होयवेसूं गृह और गृहवर्ति भगवद्विमुख जननमें अरुचि होय जाय है।

और व्यसन होयवेसूं मनुष्य कृतकृत्य होय जाय है। प्रेमकी ऐसी उच्चकोटिकूं जब पहुंच जाय तो वा समय संन्यास ले ले। अर्थात् गृहको त्याग करके कहूं प्रभुके सेवा धाममें जहां भगवदीय भगवत्पर वैष्णव रहते होंय उनके संग रहै। उनके पास मंदिरादिमें रहवेसूं यदि कोई तरहभी चित्तमें विकार आयवेको संभव होय तो न दूर न पास ऐसे स्थानमें रहै। विशेषकरकें तो श्रीमद्भागवतश्रवणवाचन और प्रभुसेवामें दृढ आसक्ति होय तो जीवनपर्यन्त वाकूं डर नहीं हैं। वाको नाश नहीं होय सके है।

जलभेदको तात्पर्य।

प्रायः बहुतसे लोग भगवान्के गुणानुवाद करे हैं। गुण गावे हैं किन्तु उनके फलमें भेद होय है कितनेही गुणगातानकूं बुरो फल मिले है तो कितनेनकूं अच्छोभी फल मिले हैं यामें कहा कारण है ऐसी आशंकाकूं दूर करवेके लिये ही यह जलभेदग्रंथ श्रीआचार्यचरणनने बनायो हैं।

वर्णनकर्ता और गुणगानकर्तानके अन्तःकरण भेदसूं भगवद्गुणनमें भी भेद हो जाय है। तैत्तिरीयसंहितामें 'कूप्याभ्यः स्वाहा' आदि मंत्र हैं उनमें आधारके कारण जलके अनेक भेद बताये हैं उन जलके भेदनके अनुसारही गुणगान कर्तानके अनुसार गुणनकेभी भेद हो जांय हैं।

गवैया, वेश्यागामीगवैया शुद्धपौराणिक, स्त्रीआदिमें आसक्त पौराणिक, भगवच्छास्त्रके पंडित होयके दुसरेनके संदेहकूं दूर करवेवारे, प्रेमयुक्त पंडित, जिनमें पाण्डित्यसूं प्रेमविशेष होय वे, थोडो थोडो प्रेम और शास्त्र होय किन्तु आचरण तथा कर्मकरवेसूं शुद्ध होंय वे, योग तथा भगवद्ध्यान करते होंय ऐसे जो विद्वान् गुणवक्ता, तप एवं ज्ञानसहित वक्ता, इत्यादि अनेक प्रकारके प्रभुके गुणगान करवेवारे हैं। उनमें गुणातीत भगवद्गुणनकूं अतिप्रेमयुक्त होकें सब गुणनकूं समानरीतिसूं गाते होंय और समझते होंय वे उत्तम हैं। एसेनके मुखसूं प्रभुके गुण सुननो अतिदुर्लभ है। प्रभुकी पूर्ण कृपा होंय तोही ऐसें गुणगानकर्ता मिलें हैं। ऐसेनके मुखसूं एक शब्दमात्रभी यदि कानमें भगवद्गुण गिरजाय तो उद्धार होय जाय।

पंचपद्यको तात्पर्य ।

या ग्रंथमें भगवत्कथाके तथा गुणनके श्रोतानको वर्णन है। प्रभुके गुण सुनवेवारे अनेक प्रकारके हैं। उनमें जिनकी प्रभुमें दृढ आसक्ति है जो लौकिक वैदिक कर्म तथा फलमें आसक्ति नहीं राखें हैं वे उत्तम श्रोता हैं।

संन्यासनिर्णयको आशय ।

या ग्रंथमें संन्यासको निर्णय कियो है। परित्याग शब्दसूं संन्यास अथवा त्याग लेनो। कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, और भक्तिमार्ग, ऐसें तीन मार्ग वेदशास्त्रनमें जीवके उद्धारके लिये कहे हैं। कर्ममार्गमें संन्यास बनही नहीं सके है। अच्छीतरह अर्थात् एकदम सबको छोड देनो यह संन्यासको अर्थ है। सो जहांतक देह है वहांतक बन सके नहीं। और कलियुगमें कर्मत्याग करवेंसूं अतिदुर्दशा होय है। अब भक्ति और ज्ञानमार्ग रहे। तहां भक्तिसाधनकि सिद्धिके लिये अथवा साधनरूपसूं संन्यास न लेनो। क्योंकि श्रवणादि नवधा-भक्ति बिन गृहस्थाश्रमके अथवा सत्संग बिना बन नही सके है। और भक्तिमें भक्तिके साधन अवश्य करने चहियें ऐसी अवस्थामें परित्याग बन नहीं सके है। यदि गृहस्थित मनुष्य सेवा आदिमें बाध करते होय यों समझके यदि संन्यास लियो जाय तो भी ठीक नहीं क्योंके संन्यास लिये पीछे भी कलिकालके मनुष्यनसूं ही काम पडेगो। कालको प्रभावही ऐसो है के विषयमें मनकूं खेंचके ले जाय है। तासूं साधनरूपसूं अथवा साधनसिद्धिके लिये भक्तिमार्गमें संन्यास लेनो ठीक नहीं है। किन्तु फलात्मक संन्यास लेनो भक्तिमार्गमें सुख दे है। भक्तिमार्गमें प्रभुको स्नेहपरिपूर्ण प्राप्त होनो फल है। वह स्नेह दो दलवारो है। एक संयोग और दूसरो विरह। प्रभुके स्नेहभये पै उत्तरदलात्मक विरहको अनुभवकरवेके लिये यदि संन्यास लियो जाय तो ठीक है। ऐसे संन्यास लेवमें कछु वेश बदलवेकी अथवा दंडकमण्डलु-ग्रहणकीभी यद्यपि अपेक्षा नहीं है तथापि अपने सगे संबंधी स्त्रीपुत्रादिके स्नेहानुबंधकी निवृत्तिके लिये लेलियें जांय तो डर नहीं।

विरहाग्निके बराबर तन्मय बनायवेवारो और दूसरो कछु नहीं है। काष्टमें अग्नि रहतेभी जबतक वह बाहर प्रकट होयकें काष्टमें प्रवेश न करै वहांतक

वो काष्ठकूं अग्निरूप आत्मरूप नहीं कर सके है, ऐसेंही आनन्दरूप प्रभु यद्यपि सर्वत्र हृदयमें विद्यमान हैं तथापि जहांतक बहार प्रकट होयकें प्रवेश न करें वहांतक जीवकूं आत्मरूप आनन्दरूप नहीं कर सकें और वहांतक जीवके सकलबंधभी नष्ट नहीं होंय हैं तबही सब बन्धनको नाश होय हैं। विरहमें प्रतिपल भावनाद्वारा प्रभु बहि:प्रकट होयकें अन्त:प्रवेश करते रहें हैं। और थोडेही कालमें जीव आनन्दमय होय जाय है और वाके सब बंध या तरह-सूं नष्ट हो जांय हैं। ऐसे विरहको अनुभव सर्वपरित्यागविना होय नहीं है। यामें दृष्टान्त कौण्डिन्य ऋषि और गोपीजन हैं सो सबकूं विदितही है।

सर्वपरित्यागमें श्रवणादिको परित्यागभी आय जाय है। क्योंकि गुणवर्णनश्रवणादि विरहाग्निके शीतल करवेवारे हैं, प्रकृतिकूं स्वस्थ बनायवेवारे हैं। तासूं सर्व परित्याग कह्यो है। याहीको नाम फलात्मक संन्यास हैं। और ये संन्यासही भक्तिमार्गमें करनो उचित है साधनसंन्यास नहीं।

ज्ञानमार्गमें संन्यास लेनो उचित नहीं। क्योंके ज्ञान साधनकी अपेक्षा राखे है। भगवदर्पित यज्ञादि किंवा श्रवणादिके द्वारा ज्ञान होय है वे सर्व-परित्याग करवेसूं बन नहीं सकें है। और कलियुगभी सब तरहसूं संन्यासमें बाधक है। तासूं कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्गमें संन्यास लेनो निषिद्ध है। केवल भक्तिमार्गमें फलात्मक संन्यास है। सो विधिवश नहि है जाके ऊपर प्रभु कृपा करदें वाकूं अपने आप होय है। साधनकी यहां गति नहीं है।

सेवाफलको तात्पर्य ।

मानसी सेवाके परिपाकमें अन्तमें तीन फल मिलें हैं। सेवा एक है और फल तीन हैं तासूं मालुम पडे है के सेवामेंभी प्रकारभेद अथवा साधनभेद अवश्य हैं। जो जा तरहकी सेवा करै वाकूं वा तरहको फल मिले है। ये यादृशी शब्दको तात्पर्य मालुम पडे हैं।

यदि सर्वोत्तम सेवा बने तो अलौकिक सामर्थ्यप्रभुके साथ गौणमुख्य कामाशनादि फल मिले है और मध्यम प्रकारकी सेवाको फल सायुज्य है। सायुज्यशब्दके दो अर्थ होंय हैं। प्रभुमें ऐक्यको होनो, और प्रभुके संग गोप-पार्षदकी तरह सहयोग। सो दोनो ही लेनो। और जो तीसरे प्रकारकी सेवा

करै वाकूं तृतीय अधिकारफल मिले है। सेवोपयोगी अक्षरात्मक देहकूं अधिकार कहें हैं।

सेवासमयके चित्तकी घबराहट अथवा और आकस्मिक विघ्न होतेही रहें किंवा लौकिकभोग आदिमें आसक्ति रहतीं होंय तो ये सब विघ्न फल नहीं होयवे दें हैं। यदि ये सब तरहके अल्प विघ्न उपाय करवेकूं भी दूर न होते होंय तो समझलेनो कि प्रभुही हमें फल देनो नहीं चाहें हैं। ऐसी अवस्थामें श्रीमद्भागवतादिको आश्रय लेकें ज्ञानमार्गमेंही निश्चिन्त रहनो। प्रभु जा तरहसूं राखे सेवककूं वा तरहसूं रहनो ये धर्म है। और यदि लौकिक बातनमें, लौकिकपदार्थनके भोगमें, जबरदस्ती मन रहतोही होय अथवा अन्य अचूकते बलवान् विघ्न आतेही रहें तोभी समझलेनो कि प्रभु मोकूं संसारमेंही राखनो चाहें हैं। क्योंके गीतामें प्रभुने प्रतिज्ञा करी है के 'असुरनकूं में सदा संसारमेंही राखूं हूं'।

रमानाथ शास्त्री.

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषाटीकासहित

श्रीवल्लभाष्टक।

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानंदसन्दोहरूप-
स्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वोऽपि शश्वत्।
तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञया प्रादुरासी-
द्भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरतिकरुणस्तं प्रपद्ये हुताशम्॥ १॥

भावार्थ—हमेशां, श्रीवृन्दावनेन्दु (हरि) ने प्रकट कियो जो रसिकनको आनंद समूहरूप, सुन्दररासकों आदिलेकें जो लीला, सोई एक अमृतसिन्धु ताके प्रवाहसूं आप्लावित करदिये हें सर्वजन जाने, ऐसे, जो श्रीमद्वल्लभाचार्य, और अपने प्रभावके प्रगट करवेकी है इच्छा जाकी, ऐसे उन्ही श्रीमद्वृन्दावनेन्दुकी आज्ञासूं भूतलपै अतिकरुणा करकें मनुष्याकृतिकों धारण करते प्रकटभये. उन अग्निस्वरूप श्रीवल्लभाचार्यके, में शरण जाऊं हूं।

कठिन समास—श्रीमच्च तद्वृन्दावनं च तस्य इन्दुः, तेन प्रकटितो यो रसिकानंदसंदोहरूपः स्फूर्जद्रासादिलीलाऽमृतजलधिभरः, तेन आक्रान्तः सर्वः येन सः। आत्मनः अनुभावः आत्मानुभावः, तस्य प्रकटने हृदयं यस्य, तस्य। १।

नाऽऽविर्भूयाद्भवांश्चेदधिधरणितलं भूतनाथोदिताऽस-
न्मार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ दैवसर्गेऽपि जाताः।

१८ ९ १३ १६ १७ १४ २१ १९ २० २४

घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजाः प्राप्नुयुर्नैव दैवी-
सृष्टिर्व्यर्था च भूमौ निजफलरहिता देव वैश्वानरैषा । २ ।

पदनके ऊपर लिखे अंकनके अनुसार अन्वय लगा लेनो ।

भावार्थ—हे देव, हे अग्निस्वरूप ! जो आप या भूतलपै प्रकट न होते, तो वेदोक्तमार्गकी सरणीमें दैवसर्गमेंभी पैदाभये, किन्तु महादेवके कहे असन्मार्गके अन्धकारमें अन्धेकी तरह भये, ये जीव, श्रीनंदनंदन श्रीकृष्णकूं कोईतरहसूंभी प्राप्त नहीं होते और अपने श्रीहरिरूपफलसूं रहितभई यह दैवी सृष्टिभी व्यर्थ होय जाती ।

कठिनांशको समास—धरण्यास्तलं, धरणितले इति अधिधरणितलम् । भूतनाथेन उदिताः भूतनाथोदिताः, असन्तश्च ते मार्गाश्च असन्मार्गाः भूतनाथोदिताश्च ते असन्मार्गाश्च, भूतनादिथोताऽसन्मार्गाणां ध्वान्तं, भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तेन अंधतुल्याः ते । २ ।

नैहान्धो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे
यस्मात्साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेव ।
तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयंति

२५ १९ २३ २४ २६

भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धंतमोगाः । ३ ।

भावार्थ—वाणीके पतिके सिवाय दूसरो कोईभी श्रुतिगणनके वचनके भावकूं जानवेके लिये समर्थ नहीं है, कारणके पतिव्रता स्त्री अपने पतिके आगेही अपने आशयकूं प्रकट करे है, तासूं हे श्रीवल्लभाचार्य ! जो लोग आपके कहे वचननसूं अन्यथा वेदनको अर्थ कहें हैं, वे स्वभावसूंहीं असुरप्रकृति होयवेसूं भ्रान्त होते केवल अन्धतमकूं प्राप्त होय हैं ।

क० समा०—निसर्गेण त्रिदशरिपुः निसर्गत्रिदशरिपुः तस्य भावः तत्ता, तया । केवलं च तदन्धं तमश्च केवलान्धंतमसि गच्छन्ति ते । ३ ।

प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपतिचरणांभोजसेवाख्यवर्त्म

६ ५ ७ ३ ८ ९ १० १२ ११ १३

प्राकट्यं यत्कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये ।

१४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१

यस्मादस्मिँस्थितो यत्किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ-

२२ २३ २४ २६ २५ २७

त्यद्धा तद्गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति । ४ ।

भावार्थ—भूतलपै प्रगट होयके आपनें श्रीहरिके चरणकमलकी सेवा करवेको मार्ग, जो प्रकट कियो हे, सो निश्चय करके अपने भक्तनके लियेही प्रकट कियो है, हे अग्निस्वरूप ! यह में मानूं हूं; कारणके यामार्गमें स्थित भक्त कोईभी वस्तु, कैसीभी तरहसूं, कहूंभी रहके, अर्पण करनो चाहे तो वा वस्तुकूं श्रीगोपीजनवल्लभ अपने सुन्दर हासवारे मुखकमलमें धारण करे हैं ।

क० समा०—चरणौ अंभोजे इवेति चरणांभोजे, व्रजपतेश्चरणांभोजे, व्रजपतिचरणांभोजयोः सेवा, सैव आख्या यस्य तत् व्रजपतिचरणांभोजसेवाख्यं, तच्च वर्म च । ४ ।

उष्णत्वैकस्वभावोप्यतिशिशिरवचःपुंजपीयूषवृष्टी-
रार्तेष्वत्युग्रमोहासुरनृषु युगपत्तापमप्यत्र कुर्वन् ।

१२ १३ ११ १४ १५ १६ १७ १९

स्वस्मिन्कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेत-
द्यस्मादानंददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चाऽसुराग्नेः । ५ ।

भावार्थ—उष्णत्वको हे एक स्वभाव जिनको ऐसेभी, दीननके ऊपर शीतल वचनरूप अमृतवृष्टिकूं और, बडे मोहवारे आसुरनपै एक साथही तापभी करते आप, अपनेमें श्रीकृष्णास्य-

पनेकूं प्रकट करो हो, किन्तु अग्निपनो प्रकट नहीं करो हो, कारण के यह आपको स्वरूप व्रजजनसमूहमें तो आनंद देय है और आसुराग्निकूं नाश करे है ।

कठि० समा०—अतिशिशिराणि च तानि वचांसि च, तेषां पुंजः, स पीयूषं च तस्य वृष्टयः ताः । ५ ।

आम्नायोक्तं यदंभोभवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो य-
त्सर्गादौ भूतरूपादभवदनलतः पुष्करं भूतरूपम् ।
आनंदैकस्वरूपात्त्वदधिभु यदभूत्कृष्णसेवारसाब्धि-
श्चानंदैकस्वरूपस्तदखिलमुचितं हेतुसाम्यं हि कार्ये । ६ ।

भावार्थ—वेदमें कह्यो जो अग्निसूं जलको होनो सो सत्य है, हे प्रभो ! सृष्टिके आदिमें जैसे भूतस्वरूप अग्निसूं भूतस्वरूप जल भयो, तैसें या भूतलपै आनंदस्वरूप आपसूं यह श्रीकृष्णसेवारूप रससमुद्रभी आनंदस्वरूपही भयो है, और यह उचितभी है, कारण के कार्यमें कारणको सादृश्य आवे है ।

कठि० समा०—आनंद एकं स्वरूपं यस्य सः—तस्मात् । भुवीति अधिभु । ६ ।

स्वामिन्श्रीवल्लभाग्ने ! क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्तितापो जनेषु ।
यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
दृष्टेऽप्यस्मिन्मुन्खेदौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् । ७ ।

भावार्थ—स्वामिन् ! अग्निस्वरूप आचार्यवर्य आपके क्षणभर सन्निधानसूं, कृपाकरके भक्तनकें प्राणनसूं प्रिय श्रीहरिके मुखकमलकी देखवेकी इच्छाको ताप होय है, सो उचित है, परन्तु पीछें श्रीहरिकें मुखकमलकूं देखकेंभी विशेषतर ताप होय है, यह अति आश्चर्य है । प्रथम औत्सुक्यको ताप और पीछें विरहसूं ताप, यों विरोधको परिहार समझनो ।

कठि० समास—श्रीवल्लभ एव अग्निः, तत्संबुद्धौ । ७ ।

अज्ञानाद्यंधकारप्रशमनपटुताख्यापनाय त्रिलोक्या-
मग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्ण एव ।
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभवनिगमाद्युक्तमानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभेमे निखिलबुधजना गोकुलेशं भजन्ते । ८ ।

। इति श्रीविठ्ठलदीक्षितकृतं श्रीवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम् ।

भावार्थ—या भूतलपै पण्डितननें आपको अग्निपनो केवल अज्ञानरूप अंधकारके दूर करवेको चातुर्य प्रकटकरवेके लिये ही कह्यो है, वास्तवमें तो आप श्रीकृष्णही प्रकट भये हो ऐसें अनुभव और शास्त्रादिके प्रमाणनसूं जानकें, हे श्रीवल्लभाचार्य ! सर्व विद्वान् आपकूं गोकुलेश जानकेंही भजें हैं ।

कठि० समास—अज्ञानादि एव अंधकारः, तस्य प्रशमनं, तस्मिन् पटुता, तस्याः ख्यापनं तस्मै । ८ ।

श्रीवल्लभाष्टकव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

व्रजभाषामें.

श्रीयमुनाष्टककी विवृति ।

जयन्ती वल्लभाचार्यनखचन्द्रमरीचयः ।
यानन्तरा मादृशानां विस्पष्टार्था न तद्गिरः ॥ १ ॥

या श्रीयमुनाष्टके अर्थज्ञानपूर्वक पाठ करवेसों भजनानंदकी सिद्धि होयगी या आशयसों श्रीमद्वल्लभाचार्य आठ श्लोकनकेद्वारा श्रीयमुनाजीके स्वरूपको वर्णन करें है ।

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम् ।
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् । १ ।

अन्वय—सकल सिद्धिहेतुं, मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम्, तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीं, यमुनां अहं मुदा नमामि ।

भावार्थ—आठप्रकारके ऐश्वर्य तथा पुष्टिमार्गीय समस्त सिद्धिनकों देयवेवारीं, और जलको दोषरूप मुरनामक जो दैत्य ताय मारनवारे श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें शोभायमान विशेषरेणु है अधिक जिनमें ऐसीं, और दोनो किनारेनपै लगे बनके प्रकट-सुगन्धवारे पुष्पनसों युक्त जलकरिके, देवदानवादिसों अथवा

दैन्यभाववारे और मानभाववारे भक्तनसों पूजित प्रद्युम्नजीके पिता श्रीकृष्णकी स्वरूपशोभाकों धारण करैं ऐसीं **श्रीयमुनाजीकों** में आनन्दसो प्रणाम करूं हूं ।

कठिनांशको समास—मुरारिपदपंकजयोःस्फुरन्ती चासौ अमन्दरेणुश्च । मुरादिपदपंकदजस्फुरदमंदरेणुः उत्कटा यस्यां सा–ताम् । १ ।

श्रीयमुनाजीको प्राकट्यको प्रकार बतामें है–

कलिंदगिरिमस्तके पतदमंदपूरोज्ज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलोन्नता ।
सघोषगतिदंतुराऽसमधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयतिपद्मबंधोः सुता । २ ।

अन्वय—कलिन्दगिगिमस्तके पतदमंदपूरोज्ज्वला, विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलोन्नता, सघोषगतिदन्तुरा, असमधिरूढदोलोत्तमा, मुकुन्दरतिवर्द्धिनी पद्मबन्धोः सुता जयति ।

भावार्थ—सूर्यमडलमें स्थित प्रभुके हृदयमेसूं रसरूप प्रकट होयके फिर कलिन्द नामक पर्वतके सिखरपै गिरते बहुतसे प्रवाहसो उज्ज्वल दीखतीं, और विलासपूर्वक गमनसो शोभायमान और अच्छीतरह दीखतीं शिलान करिके, उँची मालुम पडतीं, और ध्वनिसहित चलवेसो नतोन्नत (उंचीनीची) होतीं, ताहीसो मानो उत्तम हिन्दोलामें अच्छीतरह बैठी होंय कहा ऐसी दीखतीं ऐसीं, श्रीकृष्णमें प्रीतिको बढायवेवारीं श्रीसूर्यकी पुत्री श्रीयमुनाजी सर्वोत्कर्षसो विराजमान हैं ।

कठि० समास—विलासेन गमनं विलासगमनं, प्रकटाश्च ते गंडशैलाश्च प्रकटगंडशैलाः विलासगमनेन उल्लसन्तश्च ते प्रकटगंडशैलाश्च विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलाः विलासगमनोल्लसत्प्रकटगंडशैलैः उन्नता सा । २ ।

भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितांशुकमयूरहंसादिभिः ।
तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका-
नितंबतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम् । ३ ।

अन्वय—भुवनपावनीं, भुव अधिगतां, प्रियाभिः इव अनेकस्वनैः शुकमयूरहंसादिभिः सेवितां, तरङ्गभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुकानितंबतटसुन्दरीं कृष्णतुर्यप्रियां नमत ।

भावार्थ—भगवद्भावको दानकरकें तथा शरीरकूं भगवत्सेवोपयोगी बनायकें सकल लोककों पवित्र करनवारीं, और याहीके लिये भूतलपैं पधारीं, तथा प्रियसखीनकी तरह विविध प्रकारसो बोलवेवारे सूआ मोर हंसआदि पक्षीन करिके सेवित, और लहररूप भुजानके धारण किये कंकणनमें प्रकट दीखती मोती जैसे चमकती रेणुसौं युक्त कटिपाश्वाद्भागसौं सोभायमान ऐसीं, श्रीकृष्णकी चोथी पटरानी यूथाधिपति श्रीयमुनाजीकौं सवलोग प्रणाम करो ।

कठि० समास—तरंगा एव भुजौ, तरंगभुजौ, तयोः कंकणानि तरंगभुजकंकणानि, तेषु प्रकटा तरंगभुजकंकणप्रगटा, मुक्तिका इव वालुका मुक्तिकावालुका, तरंगभुजकंकणप्रकटा, चासौ मुक्तिकावालुका च तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका, तया युक्तं च तत् नितंबतटं च तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुकानितंबतटम्, तेन सुन्दरी, ताम् । ३ ।

या श्लोकमें प्रभु और श्रीयमुनाजीके स्वरूपकी समानता बतायी है—

अनंतगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।

विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय । ४ ।

अन्वय—अनंतगुणभूषिते, शिवविरंचिदेवस्तुते, घनाघननिभे, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विशुद्धमथुरातटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलधिसंश्रिते, सदा मम मनः सुखं भावय ।

भावार्थ—'अनन्त०' आदि सातों पद प्रभुके अर्थमें सप्तमी विभक्ति तथा विशेषण समझने और श्रीयमुनाजीके अर्थमें संबोधन समझने अनंत गुणनसों भूषित, और शिव ब्रह्मा आदि देवतानसों स्तुतिकरी गईं, और सघन मेघसदृश कान्तिवारी और ध्रुव पराशर आदि ऋषिनकों सकल मनोरथके देनवारी, और भगवल्लीलाधाम मथुराजी जाके तटपै हैं, और समग्र गोपगोपाङ्गनानसों शोभित, और अनुग्रहके समुद्र श्रीकृष्णके आश्रयमें रहनवारीं हे श्रीयमुनाजी आप मेरे मनके आनन्दको विचार करो, अर्थात् जैसें मेरे मनकूं सुख होय तैसें करो । यह श्लोक श्रीयमुनाजी और श्रीकृष्णमें समानता बतायवेवारो है, तासूं यह सब विशेषण श्रीकृष्णमेंभी लगे हैं । वा पक्षमें यह अर्थ करनो कि हे श्रीयमुनाजी ! ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌में मेरे मनकी प्रीतिकूं कराओ ।

कठि० समास—अनंताश्च ते गुणाश्च तैर्भूषिता अनंतगुणभूषिता तत्संबुद्धौ । श्रीकृष्णपक्षे, अनंतगुणैर्भूषितस्तस्मिन् । एवं सर्वत्राप्यूह्यम् । ४ ।

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।

तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीव य-
द्धरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ५

अन्वय—यया समागमनतः चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं-भावुका, सेवतां भुक्तिमुक्तिदा अभवत्, तया सपत्नि इव सदृशतां (का) इयात्, यत् (इयात्—तर्हि) कमलजा इयात्, तया हरि-प्रियकलिन्दया मे मनसि सदा स्थीयताम् ।

भावार्थ—जिन श्रीयमुनाजीके संग मिलवेसों गंगाजी भग-वान्के प्रिय करवेवारी भई और अपने सेवकनकों समग्रसिद्धि देयवेवारी भई, उन श्रीयमुनाजीके, सौतकीतरह समानभावको कौन प्राप्त होय, यदि होंय तो श्रीलक्ष्मीजीही प्राप्त होंय, ऐसी भगवानकों अतिप्रिय कलिदोषनकों दूरकरवेवारी श्रीयमुनाजी मेरे हृदयमें सदा निवास करो ।

कठि० समास—समानः पतिर्यस्याः सा । कलिं यतीति, हरिप्रिया चासौ कलिन्दा च, तया । ५ ।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः ।
यमोपि भगिनीसुतान्कथमु हंति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः । ६ ।

अन्वय—हे यमुने ! सदा नमः अस्तु, तव चरित्रं अत्यद्भुतं (अस्ति) ते पयःपानतः जातु यमयातना न भवति यमः अपि दुष्टान् अपि भगिनीसुतान् उ (अहो) कथं हन्ति, तव सेवनात् यथा गोपिकाः (तथा) हरेः प्रियः भवति ।

भावार्थ—हे श्रीयमुनाजी ! आपकों सदा नमस्कार हो, आ-पके चरित्र बहुत आश्चर्यकरवेवारे हैं, आपके जलके पानकरवेसों कभी यमसंबंधी पीडा नहीं होय है, यमराजाभी दुष्ट ऐसेभी अपनी भेनके पुत्रनकूं कैसें मारे; आपकी सेवा करवेसों श्रीगो-पीजननकी तरह (जीवभी) श्रीहरिकों प्रिय होय है ।

कठिनांश समास—पयसः पानं पयःपानं, पय पानात् इति पयः पानतः

ममाऽस्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमा-
त्तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः । ७ ।

अन्वय—हे मुकुन्दप्रीये ! तव सन्निधौ मम तनुनवत्वं अस्तु, एतावता मुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न (अस्ति), अतः तव लालना अस्तु, सुरधुनी तव एव संगमात् भुवि परं कीर्तिता, तु पुष्टि-स्थितैः कदा अपि न (कीर्तिता) ।

भावार्थ—हे हरिप्रिय यमुनाजी आपके निकटमें मेरो शरीर दिव्य नवीन होय जाय, अर्थात् लीलामें प्रवेश करवेलायक अलौकिक होयजाय, इतनेसोंही मुरदानवके मारनवारे श्रीकृष्णमें प्रीति होनी अतिदुर्लभ नहीं है, ताकारणसों आपके (स्तुतिरूप) लाडचाव हो, श्रीगंगाजी आपके ही समागमसों भूतलमें स्तुति-करी गई हैं, किन्तु पुष्टिस्थित जीवनने याविषयमें आपके सिवाय उनकी स्तुति नहीं करी है, क्यों कि उनसों मुक्ति मिले है, परन्तु लीलोपयोगी देह नहीं मिले है । ७ ।

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि ! प्रिये !
हरेर्यदनु सेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।

इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासंगम-
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ।८।

अन्वय—कमलजासपत्नि ! प्रिये ! तव स्तुतिं कः करोति, यत् हरेः अनु सेवया आमोक्षतः सौख्यं भवति, तव कथा इयं अधिका, (यत्) सकलगात्रजैः सकलगोपिकासंगमस्मरश्रम-जलाणुभिः संगमः भवति ।

भावार्थ—लक्ष्मीकी सपत्नि (सौत) और हरिकों प्रिय हे श्रीयमुनाजी ! आपकी स्तुति कौन करसकै, कारण के जो श्रीहरिके पीछे लक्ष्मीकी भी सेवा करै, तो ताकों मोक्षपर्यन्तको सुख मिले है, परन्तु आपकी तों कथा इतनी अधिक है, के सर्व अंगसों उत्पन्न भये, जो सकल गोपीजनसों श्रीप्रभुकी लीला, ताके संबंधी जो प्रस्वेदजल उनके बिन्दुनसों आपको संगम होय है ।

कठि० समास—सकलगोपिकाभिः संगमः सकलगोपिकासंगमः, तेन स्मरः सकलगोपिकासंगमस्मरः, तस्य श्रमजलं सकलगोपिकासंगमस्मरश्रम-जलं, तस्य अणवः, तैः । ८ ।

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च संतुष्यति
स्वभावविजयो भवेदति वल्लभः श्रीहरेः । ९ ।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—हे सूरसूते ! तव इदं अष्टकं (यः) सदा मुदा पठति (तस्य) समस्तदुरितक्षयो भवति, वै मुकुन्दे रतिः भवति, तथा सकलसिद्धयः (भवन्ति) च मुररिपुः संतुष्यति, स्वभावविजयः भवेत् (इति) श्रीहरेः वल्लभः वदति ।

भावार्थ—हे सूर्यकी पुत्रि श्रीयमुनाजी आपके या यमुना-ष्टकको जो कोई सदा हर्षसों पाठ करेगो, ताके समग्र पापनको नाश होयगो और निश्चय करिकें श्रीहरिमें प्रीति होयगी, और हरिप्रीति होयवेसों पुष्टिमार्गीय सिद्धि होयगी, तथा श्रीहरि प्रसन्न होंयगे, और यदि स्वभाव दुष्ट होय तो भगवद्भक्ति करवे लायक स्वभाव होय जाय है, ऐसें श्रीहरिके प्रिय श्रीवल्लभाचार्य कहें हैं । ९ ।

॥ श्रीव्रजभाषासहित श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण ॥

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

बालबोधकी विवृति ।

अब पुरुषार्थनके विषयमें होते सन्देहनकों दूर करवेके लिये श्रीमद्वल्लभाचार्य बालबोधनामक ग्रंथको आरम्भ करें हैं ।

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम् ।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् । १ ।

अन्वय—सदानन्दं हरिं नत्वा बालप्रबोधनार्थाय सुविनिश्चितं सर्वसिद्धान्तसंग्रहं (अहं) वदामि ।

भावार्थ—सच्चिदानंद श्रीकृष्णकों प्रणाम करकें, अपने हिताहितको न जानवेवारे जीवनकों पुरुषार्थसंबंधी ज्ञान करायवेके लिये वेदशास्त्रद्वारा निश्चयकिये सर्वसिद्धान्तनके संग्रहकों में कहूं हूं । १ ।

कठि० समास—प्रकर्षेण बोधनं प्रबोधनं, बालानां प्रबोधनं बालप्रबोधनं, बालप्रबोधनमेव अर्थः बालप्रबोधनार्थः, तस्मै । १ ।

धर्मार्थकामंमोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम् ।
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः । २ ।

अन्वय—मनीषिणां धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चत्वारः अर्थाः (सन्ति) ते जीवेश्वरविचारेण द्विधा हि विचारिताः ।

भावार्थ—बुद्धिमान् पुरुषनके, धर्म अर्थ काम और मोक्ष-

नामके चार पुरुषार्थ हैं, अर्थात् मनुष्य प्रयोजन हैं, वे चारौं पुरुषार्थ जीव (ऋषिलोगं) और ईश्वर (वेद) के विचारसूं दोतरह विचारे गये हैं, यह बात निश्चय है । मूलमें पुरुषार्थशब्द न देकें जो 'अर्थाः' ऐसो शब्द दीनो है तासूं मालुम पडे हे के वास्तवमें भक्तिमार्गीय पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ हैं । ये चारतो पुरुषार्थाभास हैं । २ ।

कठि० समास—धर्मार्थकाममोक्षाः आख्याः येषां ते । २ ।

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः ।
लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया । ३ ।

अन्वय—साध्यसाधनसंयुताः अलौकिकाः तु वेदोक्ताः लौकिकाः तथा एव ईश्वरशिक्षया ऋषिभिः प्रोक्ताः ।

भावार्थ—साध्य (यज्ञादि) और साधन (स्रुक्स्रुवादि, यज्ञकी सब सामग्री) सों युक्त, अलौकिक अर्थात् ईश्वरके विचारे पुरुषार्थ तो वेदमें कहे हैं, और जीवविचारित पुरुषार्थ, भगवान्की वैसी ही आज्ञा होयवेसूं ऋषिनने कहे हैं, अर्थात् याज्ञवल्क्यादिस्मृतिनमें कहे हैं । ३ ।

कठिनांशसमास—साध्यं च साधनं च साध्यसाधने, ताभ्यां संयुताः, ते । ३ ।

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः ।

अन्वय—लौकिकान् तु (अहं) प्रवक्ष्यामि, यतः आद्याः वेदात् (वेदमाश्रित्य) स्थिताः (सन्ति) ।

भावार्थ—ऋषिनके विचारे पुरुषार्थनकों तो मैं कहूं हूं, कारणके पहले (ईश्वरविचारित अलौकिक) पुरुषार्थ, वेदको आश्रय लेके स्थित हैं अर्थात् वेदमें हैं, निःसंदेह होयवेसूं अथवा जीवके अशक्य होयवेसूं उनके कहवेकी जरूरत नहीं है।

धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्। ४।
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते।

अन्वय—धर्मशास्त्राणि च नीतिः च कामशास्त्राणि क्रमात्। त्रिवर्गसाधकानि इति (हेतोः) तन्निर्णयः (अस्माभिः) न उच्यते।

भावार्थ—मन्वादि धर्मनिरूपण करवेवारे शास्त्र, और कामन्दकीयादि नीतिशास्त्र (अर्थशास्त्र) तथा वात्स्यायनादि कामशास्त्र, क्रमसों धर्म अर्थ काम इन त्रिवर्गके साधक हैं तासों इनको निर्णय हम नहीं करें है क्योंकि केवल भगवद्दासक्त भक्तनकूं उनकी अपेक्षा नहीं है। ४।

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः। ५।
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ।
त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः। ६।

अन्वय—स्वतः परतः द्विधा लौकिके मोक्षे, द्वे द्वे (कृत्वा इति यावत्) चत्वारि शास्त्राणि (सन्ति)। तत्र त्यागात्यागविभागेन सांख्ययोगौ स्वतः प्रकीर्तितौ। सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः (अस्ति)

भावार्थ—स्वाश्रय और पराश्रय दो प्रकारके ऋषिविचारित मोक्षमें दो दो करके चार शास्त्र हैं, उन चार शास्त्रनमें अनात्मवस्तुको त्याग और अत्यागके भेदसों सांख्य और योग यह दोनों स्वाश्रय मोक्षशास्त्र कहे गये हैं, और सांख्यशास्त्रमें अनात्मवस्तुको त्याग करनो कह्यो है।

कठि॰समास—त्यागश्च अत्यागश्च त्यागात्यागौ, तयोः विभागः, तेन।५-६।
सांख्योक्तमोक्षको स्वरूप कहें हैं

अहंताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते। ७।

अन्वय—अहंताममतानाशे सति सर्वथा निरहंकृतौ सति (जीवे इति शेषः) यदा जीवः स्वरूपस्थः (भवति) (तदा) सः कृतार्थः निगद्यते।

भावार्थ—देहकूं अपनो स्वरूप माननो सो अहंता, और भगवदीयवस्तुमें अपनेपनको भाव करनो सो ममता, इन दोनोनके नाश होयवेसों जब जीव 'मैं कछु नहीं करूं हूं' ऐसें सर्वथा अहंकाररहित होयजाय और अपने स्वरूपमें स्थित होय तो वह जीव कृतार्थ कह्यो जाय है, अर्थात् जा जीवकू, 'मैं ब्रह्मांश होयवेसों ब्रह्मस्वरूप हूं' ऐसें ज्ञान होय वह जीव मुक्त कह्यो जाय है।

कठि॰ समास—निर्गता अहंकृतिर्यस्मात्, सः, तस्मिन्। ७।

तदर्थं प्रक्रिया काचित्पुराणेऽपि निरूपिता।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः। ८।

अन्वय—तदर्थं ऋषिभिः बहुधा प्रोक्ता काचित् प्रक्रिया पुराणे अपि निरूपिता अबाह्यतः एकं फलम् (भवति)।

भावार्थ—या सांख्यमें कहे मोक्षके लिये, ऋषिनने अनेक प्रकारसूं कही कोईक पद्धति (रीत) श्रीभागवतादिपुराणनमें भी

'मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः' इत्यादिश्लोकनसूं निरूपण करी है, अनीश्वर सांख्यकूं छोडकें सबको एक फल होय है।

कठि० समास—बाह्यात् इति बाह्यतः, न बाह्यतः अबाह्यतः। ८।

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि।
यमादयस्तु कर्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता। ९।

अन्वय—अत्यागे (सति) हि योगमार्गः हि त्यागः अपि मनसा एव (कर्तव्यः), तु यमादयः कर्तव्याः योगे सिद्धे (सति) कृतार्थता (भवति)।

भावार्थ—सर्व वस्तुको त्याग नहीं करवेमें योगमार्ग कह्यो जाय है, यह वात निश्चय है, और त्यागभी मनसूं करनो, अर्थात् मानसिक त्याग करै, और यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि आदि आठ योगके अंग तो जरूर साधने चहियें, जो योग सिद्ध होय जाय तो वह जीवन्मुक्त कहयो जाय है। ९।

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।
ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते। १०।
ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किंचिदुदीरितम्।

अन्वय—पराश्रयेण मोक्षः तु द्विधा (अस्ति) स अपि निरूप्यते, ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रूपेण सुसेव्यते, ते सर्वार्था आद्येन न, (यतः) किंचित् शास्त्रं उदीरितं (अस्ति)।

भावार्थ—देवनमें श्रेष्ठ विष्णु और शिवके आश्रयसों मोक्ष तो दो प्रकारको है, वहभी कह्यो जाय है। वेदज्ञरूपसूं किंवा ब्रह्मज्ञपनेसुं ब्रह्मा ब्राह्मणपनेकों प्राप्त भयो है, और ब्राह्मण रूपसूं पूजित

है। तासों पूर्वोक्त चारो पुरुषार्थ ब्रह्मासूं नहीं मिलें है, कारण, ब्रह्माने थोडोसो वैखानसमोक्षशास्त्र कह्यो है। १०।

अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ। ११।
वस्तुनः स्थितिसंहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ।

अन्वय—अतः वस्तुनः स्थितिसंहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ शिवः व विष्णुः च (द्वौ अपि) जगतः हितकारकौ (स्तः)।

भावार्थ—ब्रह्मासों मोक्ष नहीं मिले है तासों, जगत्के संहार और स्थिति (पालन) करवेवारे, और पाशुपत तथा पञ्चरात्र शास्त्रके चलायवेवारे, शिव और विष्णु दोनों पुरुषार्थ प्रदानकरकें जगत्के हित करवेवारे हैं।

कठि० समास—स्थितिश्च संहारश्च स्थितिसंहारौ, तौ कार्ये ययोः, तौ। ११।

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ। १२।
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता।

अन्वय—यस्मात्, तादृशं ब्रह्म एव, (तस्मात् तौ) सर्वात्मकतया उदितौ, (किंच) तत्तच्छास्त्रे तयोः निर्दोषपूर्णगुणता कृता (अस्ति)।

भावार्थ—जाकारणसों ब्रह्महीं विष्णु और शिवरूप, होय गयो है, तासों शास्त्रमें उन दोनोंनकों सर्व जगत्के मूलकारण कहे हैं, और अपने २ शास्त्रमें उन दोनोंनकों दोषरहितपनो और सर्वगुणसंपन्नपनो कहयो है। अर्थात् गुणावतार विष्णु और शिवमें जो उन उनके शास्त्रमें सर्वात्मकपनो आदि परब्रह्म गुण बताये हैं वे सब परब्रह्मकेही हैं उनके नहीं।

कठि० समास—सर्वस्य आत्मा सर्वात्मा, सर्वात्माएव सर्वात्मकः, सर्वात्मकस्य भावः सर्वात्मकता, तया। निर्गताः दोषाः यस्मात् सः, पूर्णाः गुणाः यस्मिन् सः, निर्दोषश्चासौ पूर्णगुणश्च निर्दोषपूर्णगुणः, तस्य भावः तत्ता। १२।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तो द्वावपि यद्यपि।
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः। १३।

अन्वय—यद्यपि भोगमोक्षफले दातुं द्वौ अपि शक्तौ (स्तः), तु भोगः शिवेन मोक्षः विष्णुना इति विनिश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—यद्यपि भोग और मोक्षरूप फलकों देयवेमें शिव और विष्णु दोनोही समर्थ है, किन्तु भोग शिवसों और मोक्ष विष्णुसों मिले है यह शास्त्रको विशेष निश्चय है जो कहूं उन दोनोनकों दोनो पुरुषार्थदेवेको वर्णन आवे है वह उनमें वेसो सामर्थ्य है तासूं हैं। देवेको अभिप्राय वहां नही समझनो। १३।

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। १४।

अन्वय—लोके अपि यत् (वस्तु) प्रभुः भुङ्क्ते, तत् (वस्तु) कर्हिचित् न यच्छति, हि तत् अपि अतिप्रियाय क्वचित् एव दीयते।

भावार्थ—लोकमेंभी जो वस्तु प्रभु, स्वयं भोगै है, वा वस्तुकों कभीभी कोईकों नहीं देय है। किन्तु अपने भोगवेकी वा वस्तुकोंभी अतिप्रिय भक्तके लिये कोईकसमय देंयभी हैं। १४

नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः।
प्रत्येकं साधनं चैतद्द्वितीयार्थे महाञ्छ्रमः। १५।

अन्वय—नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः (सिद्ध्यति) एतत् प्रत्येकं साधनं, द्वितीयार्थे महान् श्रमः (भवति)।

भावार्थ—शिव और विष्णु यह दोनो देवता यदि अपने भोगवेमें नियमकिये पुरुषार्थकोभी दान करदें तो वासों भक्तकों तदाश्रय और तदीयपनो जान्यो जाय है, यह शिवको भजन और विष्णुको भजन एक २ फलको साधन है, दूसरे पुरुषार्थके देते समय शिव और विष्णुकूं (गुणपरिवर्तन करवेसों) अतिश्रम होय है। १५।

व्युत्पत्ति—तस्य अयं तदीयः, तदीयस्य भावः तदीयत्वम्।

जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा।
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति। १६।

अन्वय—जीवाः स्वभावतः दुष्टाः (सन्ति) दोषाभावाय सर्वदा श्रवणादि (कर्तव्यं) ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं सिद्ध्यति हि।

भावार्थ—जीवमात्र अपने देव मनुष्य आसुर आदि स्वभावनसों दोषवारे हैं (स्वरूपसूं नहीं), वा दोषकी निवृत्तिके लिये, श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन पूजा प्रणाम दासभाव मित्रभाव और आत्मनिवेदन यह भगवानकी नवधा भक्ति करनी चहिये, या नवधा भक्तिसों श्रीहरिमें प्रेम होय है, और वा प्रेमसों सर्व ऐहिक पारलौकिक कार्य सिद्ध होंय हैं, यह बात निश्चय है। १६।

मोक्षस्तु विष्णोः सुलभो भोगश्च शिवतस्तथा।
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्। १७।

अन्वय—मोक्षः तु विष्णोः सुलभः (भवति), च तथा भोगः शिवतः (भवति), आत्मनः समर्पणेन हि ध्रुवं तदीयत्वं भवेत्।

भावार्थ—मोक्ष तो विष्णुसूं सुलभ है, और तेसेंही भोग शिवसूं सुलभ है. आत्मीय सर्व वस्तुसहित आत्माके भगवच्चरणारविन्दमें अर्पण करवेसों निश्चय करके निश्चल तदीयपनो होय है। १७।

अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः ।
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाचरेत् । १८ ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ।
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः । १९ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो बालबोधः सम्पूर्णः ।

अन्वय—च अतदीयतया अपि चेत् केवलः समाश्रितः (तर्हि) तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै स्वधर्मं अनुतिष्ठन् किंचित् समाचरेत, अन्यथा भारद्वैगुण्यं (भवति), एवं इति सर्वं कथितं एतज्ज्ञाने पुनः भ्रमः न (भवति)।

भावार्थ—और पूर्णाधिकारी न होयवेसूं जो तदीयपनो सिद्ध न भयो होय तोभी यदि तदीयपनेसूं रहित जीव भगवानको आश्रयमात्र ले, तो तदाश्रय और तदीयपनेको ज्ञान होयवेके लिये, अपने वर्णाश्रमधर्ममें रहतो, कछुक दीक्षाग्रहण अथवा मन्त्रोपदेशग्रहणरूप सदनुष्ठान करै, जो ऐसो न करै तो दुगनो भार होय है अर्थात् एक वर्णाश्रमधर्मपरित्यागरूपभार और दूसरो निष्फलश्रवणादि साधनरूपभार माथे पडे है, या रीतिसों यह सब हमने कह्यो याको अच्छीतरह ज्ञान होय तो फिर पुरुषार्थ विषयमें सन्देह नहीं होय ।

कठि० समास—तदीयस्य भावः तदीयता, न तदीयता अतदीयता तया । तदाश्रयश्च तदीयत्वं च तदाश्रयतदीयत्वे, तयोः बुद्धिः तदाश्रयतदीयत्वबुद्धिः, तस्यै । द्वौ गुणौ यस्य सः, द्विगुणः, तस्य भावः द्वैगुण्यं भारस्य द्वैगुण्यं भारद्वैगुण्यम् । १८ । । १९ ।

ऐसें यह बालबोधकी व्रजभाषाटीका सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

सिद्धान्तमुक्तावलीकी विवृति ।

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता । १ ।

अन्वय—हरिं नत्वा स्वसिद्धान्तविनिश्चयं (अहं) प्रवक्ष्यामि, सदा कृष्णसेवा कार्या सा मानसी परा मता ।

भावार्थ—सर्व दुःख दूर करवेमें समर्थ श्रीकृष्णकूं नमन करके, अपने सिद्धान्तके निश्चयकों में कहूंगो, सर्वकालमें श्रीहरिकी सेवा करनी चहिये, वो सेवा (भक्ति) मानसिक होनी चहिये, ये फलरूप कही है । १ ।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा ।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् । २ ।

अन्वय—तत्प्रवणं चेतः सेवा, तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा (कर्तव्या), ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः (किंच) ब्रह्मबोधनं (भवति) ।

भावार्थ—श्रीहरिमें चित्तको एकतान होनो ही सेवा कही जाय है, वैसी सेवाकी सिद्धिकेलिये शरीरसों और मण्डानादिद्वारा द्रव्यसों सेवा (भक्ति) करनी चहिये, वा मानसिकभक्तिसों, अहंताममता आदि संसारकी निवृत्ति, और भगवन्माहात्म्यको ज्ञान, ये दो अवांतर फल मिलें हैं ।

क० समा०—तस्मिन् प्रवणं तत्प्रवणं । तनुश्च वित्तं च तनुवित्ते तनुवित्ताभ्यां जाता तनुवित्तजा । २ ।

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत् ।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम् । ३ ।
अपरं, तत्र पूर्वस्मिन्वादिनो बहुधा जगुः ।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा । ४ ।

अन्वय—हि परं ब्रह्म तु कृष्णः (अस्ति) सच्चिदानन्दकं बृहत् (अस्ति) तत् हि एकं सर्वं स्यात्, अपरं तस्मात् विलक्षणं, तत्र पूर्वस्मिन् वादिनः बहुधा जगुः, मायिकं सगुणं कार्यं च स्वतन्त्रं इति एकधा न जगुः ।

भावार्थ—आनन्दब्रम्हवल्लीमें अक्षरब्रम्हके आनन्दकी गणना करी है किन्तु वाके आगे कह्यो है के परब्रम्हके आनन्दमें मनवाणीभी नहीं पहुचें है तासूं शास्त्रमें श्रीकृष्णकूं ही परब्रम्ह कहे हैं। तासूं परब्रम्ह तो श्रीकृष्ण हैं। सत्‌चित्‌गणितानंद अक्षरब्रम्ह है। वो अक्षरब्रम्ह निश्चयकरकें दो प्रकारको है, एक सर्वजगत्‌रूप है, और दूसरो वा जगत्‌रूपसों जुदो है,: जाको ज्ञानी विचार करें हैं। उन दोनोंरूपनमें, पहले जगत्‌रूप ब्रम्हके विषयमें वादी अर्थात् विवाद करवेवारे अनेक प्रकारसों कहें हैं। कितनेही या जगत्‌कूं मायासों दीखतो कहें हैं। कितनेही त्रिगुणात्मक अर्थात् सत् रजस् तमस् इन तीन गुणसूं बन्यो है ऐसें कहें हैं। और कोई कहें हैं कि यह जगत् ईश्वरने बनायो है अर्थात् ईश्वरको कार्य है। कितनेही कहें हैं कि प्रवाहकी तरह अनादिकालसूं स्वतन्त्र ही चल्यो आवेहें ऐसें एक प्रकारसों नहीं कहें हैं।

कठि० समास—अल्पः आनंदः आनन्दकः, सत् च चित् च आनन्दकश्च सच्चिदानन्दकाः, ते सन्ति यस्मिन् तत् सच्चिदानन्दकम् । ३ । ४ ।

तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।
द्विरूपं चापि गंगावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी । ५ ।
महात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा ।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्माऽपि बुद्ध्यताम् । ६ ।

अन्वय—तत् एव एतत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतं, च द्विरूपं अपि गंगावत् ज्ञेयं, (एका) सा जलरूपिणी (अपरा) माहात्म्यसंयुता मर्यादामार्गविधिना सेवतां नृणां भुक्तिमुक्तिदा (अस्ति) तथा ब्रह्म अपि बुध्यताम् ।

भावार्थ—वो अक्षरब्रह्म ही या जगत्प्रकारसों होय है ये वेदको मत है। और दोरूपवारो अक्षरब्रह्मभी गंगाकी तरह जाननो। एक गंगा जलरूप है। और दूसरी माहात्म्यसंयुक्त तीर्थरूप जो मर्यादामार्गकी रीतिसूं सेवनकरवेवारे मनुष्यनकूं भोग और मोक्ष देवेवारी है। ऐसेहीं अक्षरब्रह्मभी दो प्रकारको जाननो।

कठिनांश समास—द्वे रूपे यस्य तत् द्विरूपं, । ५ । ६ ।

तत्रैव देवतामूर्तिर्भक्त्या या दृश्यते क्वचित् ।
गंगायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये । ७ ।

अन्वय—तत्र एव या देवतामूर्तिः (सा) भक्त्या च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये क्वचित् गंगायां दृश्यते ।

भावार्थ—वा तीर्थरूप और जलरूप गंगामें ही जो देवता-

---

१ अत्र चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात्–अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यमिति बोध्यम् । अनुवादकः ।

रूप गंगाकी मूर्ति है, वह गंगा, भक्तिके उत्कर्ष होयवेसूं और विशेषकरके जाकूं प्रवाह और मूर्तिमें अभेद बुद्धि होय वा भक्तकूं ही कोईसमय गंगामें दीखे है ।

क० समा०—अभेदेन बुद्धिः अभेदबुद्धिः प्रवाहे अभेदबुद्धिर्यस्य सः, तस्मै । ७ ।

प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले ।
विहिताच्च फलात्तद्धि प्रतीत्याऽपि विशिष्यते । ८ ।

अन्वय—सा सर्वेषां प्रत्यक्षा न, तया जले प्राकाम्यं स्यात्, हि तत्, विहितात् फलात् च प्रतीत्या अपि विशिष्यते ।

भावार्थ—वह देवमूर्ति गंगा सबनकूं प्रत्यक्ष नहीं दीखे है, वा गंगासूं ही जलमें स्नान आचमन आदि उत्तम कार्य करनो सिद्ध होय है, कारणके वह जल, शास्त्रमें कहे फलकूं देयवेसूं और महात्मानके विश्वाससूंभी अन्यजलकी अपेक्षा उत्तम समझो जाय है । ८ ।

यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ।
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते । ९ ।

अन्वय—यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता (गङ्गा पवित्रीकर्तुं) तथा बृहत् (ब्रह्म सर्वशक्तं) यथा देवी (गङ्गा) तथा कृष्णः (परब्रह्म) तत्रापि इह एतद् उच्यते ।

भावार्थ—तासूं जैसे संकोचविकासी गंगाको जल है, तैसेही यह जगत्रूप ब्रह्म भी आविर्भाव तिरोभाव धर्मवारो है, और जैसे पवित्रकरवेवारी सामर्थ्यरूप गंगा है, तेसें सर्वशक्तिमान् अक्षरब्रह्म है, तथा जैसे आधिदैविक देवीरूप गंगा है, वैसेही परब्रह्म श्रीकृष्णभी आधिदैविक स्वरूप हैं, तामेंभी यहां इतनो और कह्यो जाय है या गंगाजीके दृष्टान्त सूं ये समझनो के श्रीगंगाके जलमें और गंगाजीमें यद्यपि भेद नहिं है तथापि वा जलमें यदि तीर्थबुद्धि न होय तो स्नानादि करवेमेंभीफल नहीं होय है वैसे जगत्में और ब्रह्ममें यद्यपि भेद नहीं है तोभी जगत्में ब्रह्मबुद्धि न राखके जो याकी उपासना करै तो ब्रह्मोपास नाको फल नहीं होय है । तासूं जो लोग कहें हैं के जो जगत ब्रह्मही होय तो हम अपनी स्त्रीसूं स्नेह करें हैं वाको फल ब्रह्मोपासनाको फल मिलनो चहिये ये शंका दूर भई । ९ ।

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ।
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः । १० ।

अन्वय—जगत् तु त्रिविधं प्रोक्तं, ततः ब्रह्मविष्णुशिवाः देवतरूपवत् प्रोक्ताः, ब्रह्मणि हरिः इत्थं मतः ।

भावार्थ—जगत् तो सत्वादि गुणनके भेदसूं तीन प्रकारको है, तासूं वा जगत्के अधिष्ठाता ब्रह्मा विष्णु और शिव, लोकमें उपासनाकरवेलायक देवता कहे हैं । और अक्षरब्रह्ममें श्रीकृष्णही सेव्य देवता माने हैं । अर्थात् ब्रह्मज्ञानी मुक्त जीवकूं भजवेलायक तो श्रीकृष्ण हैं ।

कठि० समास—तिस्रो विधाः यस्य तत् । देवतारूपेण तुल्याः देवतारूपवत् । १० ।

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्ब्रह्मादिभ्यो न चाऽन्यथा
परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः । ११ ।

अन्वय—अस्मिन् लोके कामचारः तु ब्रह्मादिभ्यः, (भवति),

च अन्यथा न, स्वात्मनि तु परमान्दरूपे कृष्णे निश्चयः (भवति)।

भावार्थ—या सात्विकादि तीन प्रकारके लोकमें उन २ के भक्तनकी लौकिक मनोरथ पूर्ति तो ब्रह्मादि तीनो देवतानसूं ही होय है। और तरहसूं नहीं होय सकै। और अपने आत्माके लिये तो नित्य निरवधिक आनन्दरूप श्रीकृष्णमें ही सकल मनोरथपूर्तिको समूह होय है।

कठि० समास—स्वस्य आत्मा स्वात्मा, तस्मिन्। स्वात्मने इत्यर्थ अत्र **'निमित्तात्कर्मयोगे'** इति सूत्रेण 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ती'तिवत् चतुर्थ्यर्थे सप्तमी ज्ञेया। निःशेषाणां चयः निश्चयः, सर्वकाममूलभूतानन्दप्राप्तिरित्यर्थः। ११।

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्।
आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः। १२।

अन्वय—अतः तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधीयतां, हि ब्रह्मरूपे आत्मनि, व्योम्नि छिद्रा इव, चेतनाः (सन्ति)।

भावार्थ—तासों सर्ववस्तु ब्रह्मात्मक है, या भावसों श्रीकृष्णमें अंतःकरण लगाओ, ब्रह्मांश होयवेसों ब्रह्मारूप आत्मामें, आकाशमें छिद्रकीतरह अनेकतरहकी बुद्धि मालुम पड़ैं है, अर्थात् आकाशमें चलनीप्रभृति आड़ी आयवेसूं जैसें न होतेभी छिद्र दीखे हैं। ऐसेंही आत्मामें अन्यथा बुद्धिभी औपाधिक हैं, और विविधप्रकारकी हैं, ओर उन्हींसों जीवको बंधन होय रह्यो है।

कठि० समास—सर्वं ब्रह्म इति वादः ब्रह्मवादः, तेन। १२।

उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने।
गंगातीरस्थितो यद्वद्देवतां तत्र पश्यति। १३।

तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन्ज्ञानी प्रपश्यति।

अन्वय—यद्वत् गंगातीरस्थितः तत्र देवतां पश्यति, तथा उपाधिनाशे (सति) (च) ब्रह्मात्मत्वावबोधने विज्ञाने (सति) ज्ञानी, स्वस्मिन् परंब्रह्म कृष्णं प्रपश्यति।

भावार्थ—जैसे गंगाके तीरपै स्थित, और प्रवाहमूर्ति आदिगंगामें एकभाववारो गंगाको भक्त, प्रवाहरूप गंगामें ही देवतारूप गंगाजीको दर्शन करे है, तेसेंही या जीवकूं प्रभु या प्रकारसूं उद्धार करनो चाहें वाकी अविद्यारूप उपाधिके नाश भयेसूं और 'सर्ववस्तु ब्रह्मरूप है' ऐसो यथार्थ ज्ञानरूप अनुभव होयवेसूं ज्ञानीभी अपनी आत्मामें परब्रह्म श्रीकृष्णको दर्शन करै है। क्योंकि आत्मासहित सब जगत् अक्षररूप है और अक्षर तो प्रभुके रहवेको धाम है तासूं ऐसे अक्षर ज्ञानी कूं आत्मामें प्रभुके दर्शन होनो सहज है।

कठि० समा०—ब्रह्म आत्मा यस्य तत् ब्रह्मात्म, ब्रह्मात्मनः भाव ब्रह्मात्मत्वं, ब्रह्मात्मत्वेन अवबोधनं, तस्मिन्। १३।

जो सेवाको दृढ आग्रही न होय और लौकिक ईच्छावारो होय वाकूं कहा फल होय सो लिखे हैं—

संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा। १४।
अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक्।

अन्वय—यथा दूरस्थः अपेक्षितजलादीनां अभावात् तत्र दुःखभाक् (भवति), तथा यः संसारी तु (श्रीकृष्णं) भजते, सः (दर्शनाभावात्) दुःखभाक् (भवति)।

भावार्थ—जैसे गंगासों दूर स्थित मनुष्य, इच्छित जल और दर्शनके न होंय वे सों वहां दुखी होयहै, तैसेहीं जो अहं-

ताममतामें बँध्यो जीव कृष्णको भी भजन करै, तो वह भगवद्दर्शन न होयवेसों केवल दुखी होय है

कठिनांश समास—जलं आदिर्येषां तानि जलादीनि, अपेक्षितानि च तानि जलादीनि च, तेषां । १४ ।

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः । १५ ।
आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत् ।

अन्वय—तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थः सर्वलोकतः विमुक्तः (सन्) आत्मानंदसमुद्रस्थं कृष्णं एव विचिन्तयेत् ।

भावार्थ—तासों श्रीभगवन्मार्गमें रहवेवारो पुरुष तो अहंताममतारूप संसारसूं अलग रहतो, निज आनंदसमुद्रमें विहार-करते श्रीकृष्णकोही स्मरण करै । अर्थात् लौकिक इच्छानको परित्याग करकें केवल प्रभुसेवा करै ।

कठि० समा—आत्मनः आनंदः आत्मानंदः, स एव समुद्रः, आत्मानंदसमुद्रः, तस्मिन्, तिष्ठति सः, तम् । १५ ।

लौकिक इच्छाराखतो होय किन्तु सेवाको दृढ आग्रही होय वाके फलकूं कहें हैं—

लोकार्थी चेद्भजेत्कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा । १६ ।
क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ।

अन्वय—(यः) लोकार्थी (सन्) कृष्णं चेत् भजेत् (तर्हि) (सः) सर्वथा क्लिष्टः भवति, क्लिष्टः अपि (जनः) चेत् कृष्णं भजेत् (तस्य) सर्वथा लोकः नश्यति ।

भावार्थ—जो पुरुष, लौकिककामनानको प्रयोजन राखकें जो कदाचित् श्रीकृष्णकी सेवा करै, तो वह सबतरहसूं क्लेश पावै है, और क्लेश सहन करतो भी पुरुष यदि भगवद्भजन करेंजाय तो वाको सबतरहसों अहंताममतारूप संसार दूर होय है । १६

ज्ञानाऽभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु । १७ ।
मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः ।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः । १८ ।

अन्वय—पुष्टिमार्गी ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) पूजोत्सवादिषु तिष्ठेत्, मर्यादास्थः तु ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) गङ्गायां तिष्ठेत्, पुष्टिमार्गे अनुग्रहः नियामकः इति स्थितिः (अस्ति) ।

भावार्थ—पुष्टिमार्गीय भक्त, ज्ञानके अभावमें अर्थात् अपने स्वरूप और भगवत्स्वरूपको ज्ञान न होय तो, श्रीभागवतमें तत्पर रहतो एकादशस्कंधमें कही पूजाकी रीति और पर्वनमें अनेक उत्सव जहां होते हौंय वहां रहै । और मर्यादामार्गीय भक्त तो ज्ञानके अभावमें श्रीभागवतमें तत्पर रहतो श्रीगंगा तटपै रहै । अनुग्रह-मार्गमें भगवानको अनुग्रहही स्थान आदिको नियमकरवेवारो है यह भगवन्मार्गकी मर्यादा है, अर्थात् शुद्धसेवायुक्त मन्दिर आदिद्वारा जहां भगवान् अनुग्रह करते होंय वहां पुष्टिमार्गीय भक्त श्रीभागवतश्रवणवाचनतत्पर होयके रहै ।

कठि० समा०—मृग्यते अनेन इति मार्गः पुष्टिरेव मार्गः पुष्टिमार्गः, तस्मिन् । पूजाश्च उत्सवाश्च पूजोत्सवाः पूजोत्सवाः आदिर्येषां ते, तेषु । श्रीमच्च तद्भागवतं च श्रीभागवतं, तस्मिन् तत्परः श्रीभागवततत्परः । १८ ।

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः । १९ ।

अन्वय—उभयोः तु क्रमेण एव पूर्वोक्ता एव फलिष्यति, (यतः) भक्तिमार्गः ज्ञानाधिकः (अस्ति) तस्मात् एवं निरूपितः ।

भावार्थ—मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय भक्तनकूं क्रमसूं ही पूर्वमें कही मानसी सेवाही प्राप्त होयगी, भेद इतनोही है के मर्यादामार्गीयकूं अनुग्रहमार्गमें आयवेसूं प्राप्त होयगी, क्योंकि 'क्लेशोधिकतरस्तेषां' इत्यादि वचननसों यह सिद्ध है, और अतएव भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसूं अधिक है, तासूं हीं ऐसो निरूपण कियो है।

कठि० समास—ज्ञानात् अधिकः ज्ञानधिकः। १९।

भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः।
अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति। २०।

अन्वय—यथा तीरस्थः भक्त्यभावे तु दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावं आपन्नाः (सन्) तस्मात् स्थानात् नश्यति, (तथा, भक्तोऽपि नश्यतीत्यर्थः)।

भावार्थ—जैसे गंगातीरपै रहतो पुरुष, भक्ति न होय तो अपने दुष्टकर्मनसूं पाखंडीपनेकूं प्राप्त होयकें और तीर्थज्ञानरुप स्थानसूंभी नष्ट होय जाय है, तैसें भक्तभी भक्तीके अभावमें अपने दुष्कर्मनसूं वा स्थानसूं भ्रष्ट होयके नीच योनीनमें जन्म ले है। (भक्तेः अभावः भक्त्यभावः)। २०।

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम्।
एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात्। २१।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्णा।

अन्वय—एवं मया गुप्तं स्वशास्त्रसर्वस्वं निरूपितं एतत् बुध्वा पुरुषः सर्वसंशयात विमुच्येत।

भावार्थ—या रीतिसों मैंने अपने शास्त्रको गोप्य सेवारूप सिद्धान्त कह्यो, याकूं जानकें पुरुष सर्वसन्देहनसूं मुक्त होय हैं। २१।

ऐसें श्रीसिद्धान्तमुक्ताबलीकी व्रजभाषाटीका सम्पूर्ण भई।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदकी विवृति।

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्।
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च। १।
वक्ष्यामि सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः।

अन्वय—पृथक् पृथक् विशेषेण, जीवदेहक्रियाभेदैः, प्रवाहेण, च फलेन पुष्टिप्रवाहमर्यादाः (अहं) वक्ष्यामि, यच्छ्रुतेः सर्वसंदेहा न भविष्यन्ति।

भावार्थ—पुष्टि प्रवाह और मर्यादा इन तीननके जुदे २ विशेष (धर्म) नसूं, सृष्टिकी चलती परंपरासूं, जुदे २ मिलते फलसूं और जीव देह क्रिया इनके भेदनसूं पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्गको निरूपण (में) करूंगो, जाके श्रवणकरेसूं सबतरहके संदेह दूर होंयगे।

कठि० समा०—पुष्टिश्च प्रवाहश्च मर्यादा च पुष्टिप्रवाहमर्यादाः, ताः। जीवश्च देहश्च क्रियाश्च जीवदेहक्रियाः, तासां भेदाः, तैः। यासां श्रुतिः यच्छ्रुतिः, तस्याः। १।

भक्तिमार्गस्य कथनात्पुष्टिरस्तीति निश्चयः। २।

अन्वय—भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—शास्त्रनमें '**नायमात्मा**' '**केवलेन हि भावेन**'

इत्यादिवचननसूं भक्तिमार्ग जुदोही कह्योहै तासूं निश्चय होय है के भगवान्‌को अनुग्रह है, और ताहीसूं यहभी मालुम पडैहे के पुष्टि (अनुग्रह) मार्गभी जुदोही है माहात्म्याज्ञानकूं भूलगई और बोली किं 'में आपके लिये कंससूं भी डरपूहूं' यह सुहास स्नेहको लक्षण है ये स्नेह अनुग्रह बिना नही मिले है तासूं भी मालुमपडे है के पुष्टिमार्ग जुदो ही है। पंचमरकंधमे कह्यो है जो 'प्रभु अपने भजवे वारेनकूं मुक्ति देदें हैं पर भक्ति नहीं देहैं तासूं भी मालुम पडे है कि जाके ऊपर अति अनुग्रह होय वाहीकूं भक्ति देंहैं। और देवकीजीने जब स्तुति करी तब माहात्म्यकी स्फुर्तिही किन्तु थोडी देरही। २।

'द्वौ भूतसर्गौ' वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।
वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादापि व्यवस्थिता। ३।

अन्वय—**'द्वौ भूतसर्गौ'** इत्युक्तेः प्रवाहः अपि व्यवस्थितः (अस्ति) (किंच), वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादा अपि व्यवस्थिता (अस्ति)

भावार्थ—गीताजीमें श्रीकृष्णने अर्जुनसूं कही है के **'या लोकमें दैव और आसुरभेदसों प्राणीनकी दोतरहकी सृष्टि है'** तासूं प्रवाहमार्गभी सिद्ध है, और कर्मादिकी व्यवस्था करवे-वारो वेद विद्यमान है, तासूं सिद्ध है के मर्यादामार्गभी अनादि कालसूं चलो आवे है। ३।

कश्चिदेव हि भक्तो हि 'यो मद्भक्त' इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः। ४।

न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः।
'यदा यस्येति' वचनान्नाहं वेदैरितीरणात्। ५।

अन्वय—**'यो मद्भक्त'** इति ईरणात् (किंच) सर्वत्र उत्कर्षकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः, हि कश्चित् एव भक्तः, सर्वः न, अतः प्रवाहात् हि (पुष्टिमार्गः) भिन्नः (अस्ति) च **'यदा यस्येति'** वचनात् **'नाहं वेदैः'** इति ईरणात् वेदतः (अपि) भेदतः (स्थित इति शेषः)।

भावार्थ—गीताजीमें भगवानने **'जो मेरो भक्त है सो मोकूं प्रिय है'** यह कह्यो है तासूं, और सर्वशास्त्रनमें भक्तिको उत्कर्ष कह्यो है तासूं, पुष्टिमार्ग है यह सिद्ध होय है, कारण के कोईक ही भक्त होय है, सब नहीं होंय हैं, तासूंभी पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्गसूं भिन्न है यह निश्चय है,। तथा **'जब भगवान् अनुग्रह करें हैं तब भक्त, लोकमार्ग और वेदमार्गमें बुद्धि नहीं लगावे है'** या भागवतके वचनसूं तथा **मेरो ऐसो दर्शन वेदादिसों नहीं होय है'** या भगवान्‌के वचनसूंभी यह निश्चय होय है के पुष्टिमार्ग, मर्यादामार्गसोंभी भिन्नतया स्थित है, अर्थात् भिन्न है।

कठि० समास—उत्कर्षस्य कथनं उत्कर्षकथनं, तस्मात्, भेदं आश्रित्य स्थितः इति भेदात्। ४–५।

। कोईके पूर्वपक्षको उत्तर कहें हैं।

मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ।
न तद्युक्तं सूत्रतो हि भिन्नौ युक्त्या हि वैदिकः। ६।

अन्वय—मार्गैकत्वे अन्त्यौ अपि तनू (च) भक्त्यागमौ मतौ

इति चेत्, तत् युक्तं न, हि सूत्रतः युक्त्या वैदिकः (मार्गः) हि भिन्नः (अस्ति)।

भावार्थ—तीनोंनकूं एकही मार्ग मानो अर्थात् प्रवाह और मर्यादामार्ग दोनो भक्तिमार्गके अंग हैं, तथा भक्तिके साधन शास्त्र हैं, ऐसें कहो तो भी युक्त नहीं, कारणके मुख्यको फलही जामें फल मानो जाय, ताकूं अंग कहें हैं, परन्तु यहां मर्यादाको फल '**तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्**' या सूत्रसूं अक्षरैक्य कह्यो है, और भक्तिको फल '**तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्**' या शांडिल्य-सूत्रसूं आनंदप्राप्ति कही है, तासूं फल जुदे २ होंयवेसूं दोनो मार्ग जुदे हैं, और प्रवाहको तो संसार फल है तासूं वहभी भक्तिमार्गको अंग नहीं होय सकै है।

कठि० समास—एकस्य भावः एकत्वं मार्गाणां एकत्वं मार्गैकत्वम्। ६।

जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्रुतेः।
यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः। ७।
प्रमाणभेदाद्भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः।

अन्वय—यथा पुष्टिमार्गे श्रुतेः जीवदेहकृतीनां भिन्नत्वं, तद्वत् नित्यता च (सिद्ध्यति) हि द्वयोः अपि निषेधतः, (किंच) प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः।

भावार्थ—जैसे पुष्टिमार्गमें श्रुतिके प्रमाणसूं पुष्टिमार्गीय जीव देह और उनकी क्रिया जुदीं हैं, तैसें उनकी नित्यताभी '**ध्रुवा सोऽस्य कीरयः**' श्रुतिसों मानी है, याही कारणसूं '**स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठितां**' इत्यादि प्रमाणनसूं प्र-

वाह और मर्यादा दोनों मार्गनमें पुष्टिफल (भगवत्प्राप्ति) के मिलवेको निषेध कियो है तासूं, और प्रवाहमर्यादामार्गनकूं प्रतिपादनकरनवारे शास्त्रनके भेदसूंभी पुष्टिमार्ग, दोनोंनसूं भिन्नही कह्यो गयो है।

कठि० समा—जीवाश्च देहाश्च कृतयश्च जीवदेहकृतयः तासाम्। ७।

सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम्। ८।
इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः। ९।

अन्वय—स्वरूपांगक्रियायुतं सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि, हरिः इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान्, वससा वेदमार्गं हि (सृष्टवान्) कायेन पुष्टिं (**सृष्टवान्**) (इति) निश्चयः (अस्ति)।

भावार्थ—जीवदेह और क्रियानसहित तीनों मार्गनके सृष्टिभेदकूं कहूं हूं, '**बहुस्यां प्रजायेय**' '**न तत्र रथाः**' '**विद्धि मायामनोमयं**' आदि श्रुतिनसूं मालुम पडै है के श्रीहरिने इच्छाद्वारा मनसूं प्रवाहमार्गकी सृष्टि करी, और '**स भूरिति व्याहरन्भूमिमसृजत**' '**वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे**' आदि वचननसूं ज्ञात होय है के वाणीसूं मर्यादामार्ग पैदा कियो तथा '**द्वेधाऽपातयत्**' '**स नैव रेमे**' '**स हैतावानास**' आदि वचननसूं जान्यो जाय है के स्वरूपसूं पुष्टिमार्गकी सृष्टि निजरमणके लिये करी है, ऐसो निश्चय है।

कठि० समास—स्वरूपं च अंगं च क्रियाश्च स्वरूपांगक्रियाः, ताभिर्युतः, तम्। ८–९।

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च ।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकता ।१०।

अन्वय—लोके मूलेच्छातः फलं (भवति), च वैदिके अपि वेदोक्तं (फलं) तु पुष्टौ कायेन फलं, (एवं) भिन्नेच्छातः अपि एकता न ।

भावार्थ—'शुक्लकृष्णे गती ह्येते' इत्यादि वचननसों मालुम पडै है, के प्रवाहमार्गमें 'सष्टि हमेशां चलती रहै' या इच्छासों लौकिक फल मिलें हैं, और मर्यादामार्गमें अक्षरमें मिलजानो यह वेदोक्त फल मिले है, किन्तु 'नायं सुखापो' आदि वाक्यनसूं पुष्टिमार्गमें निजस्वरूपसूं फल मिले है, तासूं फलदेयवेकी अलग २ इच्छा होयवेसूंभी पुष्टि और अन्य मार्गनको ऐक्य नहीं है । १० ।

'तानहं द्विषतो' वाक्याद्भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ।
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः । ११ ।

अन्वय—'तानहं द्विषतो' वाक्यात् प्रवाहिणः जीवाः भिन्नाः (सन्ति), अत एव भिन्नौ इतरौ, मोक्षप्रवेशतः सान्तौ (स्तः) ।

भावार्थ—'मैं जगत्रूप ब्रह्मसूं द्वेषकरनवारे उन आसुर जीवनकूं वारंवार आसुरयोनिनमेंही डारूं हूं' या श्रीकृष्णके वाक्यसूं प्रवाहमार्गीय जीव भिन्न हैं ऐसो निश्चय होय है, ताहीसूं प्रवाहीनसूं जुदे मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय जीव, अक्षरैक्य और हरिप्राप्तिके होयवेसूं अंतवारे हैं, अर्थात् इन दोनोनको जीवभाव मिट जाय है, और प्रवाहीनकूं सदा संसारचक्रमेंही रहनो पडे है ।

कठि० समास—मोक्षश्च प्रवेशश्च मोक्षप्रवेशौ, मोक्षप्रवेशाभ्यां इति मोक्षप्रवेशतः । अन्तेन सहितौ सान्तौ । ११ ।

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः ।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् । १२ ।

अन्वय—कस्मात् पुष्टिमार्गे जीवाः भिन्ना एव संशयः न (अस्ति), तत्सृष्टिः भगवद्रूपसेवार्थं (अस्ति), अन्यथा न भवेत् ।

भावार्थ—पूर्वमें तीनोंमार्ग जुदे २ कहे हैं तासूं पुष्टिमार्गमें जीव दोनों मार्गनके जीवनसूं जुदेही हैं, यामें अणुमात्रभी सन्देह नहीं है, उन पुष्टिमार्गीयजीवनकी सृष्टि भगवान्‌की स्वरूपसेवाके लिये है, अन्यके लिये उनकी सृष्टि होय यह संभव नहीं है ।

कठि० समास—भगवतः रूपं भगवद्रूपं, तस्य सेवा भगवद्रूपसेवा, तस्यै इति भगवद्रूपसेवार्थम् । १२ ।

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा । १३ ।
तथापि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि ।

अन्वय—स्वरूपेण अवतारेण लिंगेन च गुणेन च (पुष्टिजीवानां) स्वरूपे वा देहे वा तत्क्रियासु तारतम्यं न (अस्ति), तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि ।

भावार्थ—सच्चिदानन्दस्वरूपकरकें, अवतारकरकें, ध्वज वज्र आदि चिह्नकरकें, और ऐश्वर्यादि गुणनकरकेंभी पुष्टिजीवनके स्वरूपमें देहमें अथवा उनकी क्रियामें भगवान्‌की अपेक्षा यद्यपि भेद नहीं हैं, तथापि जितने भेदसूं रमणरूप कार्य सिद्ध होय उतनो तो फरक, आपमें और भक्तनमें भगवान् राखें हैं, यह बात निश्चय है ।

कठिनांशको समास—तेषां क्रियाः तत्क्रियाः, तासु। तरतमस्य भावः तारतम्यम्। १३।

ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः। १४।
प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः। १५।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः।

अन्वय—ते हि शुद्धमिश्रभेदात् द्विधा, पुनः भगवात्कार्यसिद्धये मिश्राः प्रवाहादिविभेदेन त्रिधा (सन्ति), पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः (भवन्ति), प्रवाहेण विमिश्राः क्रियारताः (भवन्ति) मर्यादया (विमिश्राः) गुणज्ञाः (भवन्ति) (किंच) प्रेम्णा शुद्धाः ते अतिदुर्लभाः (भवन्ती)।

भावार्थ—वे पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र भेदसों दो प्रकारके हैं, फिर उनमेंभी भगवानके रमणरूपकार्यकी सिद्धिके लिये मिश्रजीव, प्रवाहादि तीनभेदकरकें तीनप्रकारके हैं, अर्थात् प्रवाहमिश्र मर्यादामिश्र और पुष्टिमिश्र ऐसें तीन प्रकारके हैं, जो पुष्टिजीव थोडे अनुग्रहसूं और मिश्र होंय हैं, अर्थात् मिले हें वे सर्वज्ञ होंय हैं, जो प्रवाहसूं मिश्र होंय हैं वे कर्ममें प्रीतिवारे होंय हैं, वे जो मर्यादासूं मिश्र होंय हैं वे भगवद्गुणादिके जानवेवारे होंय हैं, और जो पुंष्टिजीव प्रेमसूं शुद्ध होंय हैं वे तो अतिदुर्लभ हैं, इन्हीं चारभेदनकूं ग्रन्थान्तरमें पुष्टिपुष्टभक्त प्रवाहपुष्टभक्त मर्यादापुष्टभक्त और शुद्धपुष्टभक्त कहे हैं। या रीति सूं मिश्रभक्तिवारे भक्त एकको दूसरेमें सांकर्य होयवेसूं नौ प्रकारकेभी और अनेक प्रकारकेभी होय सके हैं श्रीकल्याणरायजीने मध्यम

नौ भेद यों बताये हैं प्रथम अनुग्रहयुक्त जो जीव हैं उनपै प्रभुको और अनुग्रह होय तो वे प्रभुके अभिप्रायतक जानवेवारे होय जांय हैं। वे पुष्टिपुष्टभक्त कहावें हैं। और जिन पुष्टिजीवनको मर्यादामें फिर अङ्गीकार होय वे भगद्धर्मनकें जानवेवारे होंय। उन्हे मर्यादापुष्ट कहें । और जो पुष्टजीव प्रवाहमिश्र होंय वे पूजा आदिमें रत होंय। वे प्रवाहपुष्ट कहे जांय हैं। अब प्रवाही जीव यदि पुष्टिमिश्रित होंय तो वे भगवत्तीर्थप्रिय होंय हैं। जो प्रवाही जीव मर्यादामिश्रित होंय वे काम्य कर्म करवेवारे होंय। और जो प्रवाही फिर प्रवाहमिश्र होंय वे केवल लौकिक कर्म करवेवारे होंय हैं। येही आसुरी जीव हैं। अब मर्यादामार्गीय यदि फिर अनुग्रहयुक्त होंय तो वे हरिमाहात्म्यकूं जानकें भगवत्प्रीतिके लिये कर्म करें हैं। और जो मर्यादामार्गी मर्यादामिश्रित होंय वे स्वर्गार्थ कर्म करें। और जो मर्यादामार्गी प्रवाहमिश्र होंय वे लौकिक फलके लिये कर्म करें।

कठिनांशको समास—शुद्धाश्च मिश्राश्च शुद्धमिश्राः, तेषां भेदः तस्मात्। प्रवाहः आदिः येषां ते प्रवाहादयः, तेषां विभेदः, तेन। १४–१५।

एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते। १६।
भगवानेव हि फलं स यथाऽऽविर्भवेद्भुवि।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्। १७।

अन्वय—एवं तेषां सर्गः तु (निरूपितं), अत्र फलं तु निरूप्यते, हि भगवान् एव फलं, स भुवि गुणस्वरूपभेदेन यथा आविर्भवेत्, तथा तेषां फलं भवेत्।

भावार्थ—या प्रकारसूं उन पुष्टिजीवनकी उपत्ति तो कही, अब यहां उनके फलकोभी निरूपण करें हैं, निश्चयकरकें भगवान् ही फल हैं, वे श्रीकृष्ण, भक्तके हृदयमें अथवा वृन्दावनादिस्थलमें ऐश्वर्यादि गुण और नृसिंहवामनादिस्वरूपके भेदसूं जा रीतिकरकें प्रगट होंयँ, ताही रीतिसों उनके फल होंय हैं।

कठि० समास—गुणाश्च स्वरूपाणि च गुणस्वरूपाणि, तेषां भेदः, तेन। १६–१७।

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित्।
अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि। १८।

अन्वय—आसक्तौ अथवा अहंकारे, लोके तन्मार्गस्थापनाय क्वचित् भगवान् एव शापं दापयति।

भावार्थ—नलकूवरादिकी तरह यदि लौकिकमें आसक्ति होय अथवा चित्रकेतुप्रभृतिकीतरह जो अहंकार होय तो अपने भक्तनकूं अपने २ पुष्टिमर्यादाआदिमार्गनमें राखवेके लिये कोईसमय भगवान्ही कोईकेद्वारा उन्हे शाप दिवावें हैं।

कठि० समास—तेषां मार्गाः तन्मार्गाः, तेषु स्थापनं तन्मार्गस्थापनं तस्मै। १८।

न ते पाषण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे। १९।

अन्वय—ते पाषण्डतां न यान्ति, च (तेषां) रोगाद्युपद्रवाः न (भवन्ति), प्रायेण (ते) महानुभावाः (भवन्ति) (तेषां) शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे (भवति)।

भावार्थ—जिनकों भगवान् शाप दिवावें हैं वे भक्त, फिर

लोकवेदभक्तिमार्गसूं विरुद्ध नहीं होंय हैं, तथा उनके रोगादि उपद्रवभी नहीं होंय हैं, बहोतकरकें वे महानुभाव होंय जांय हैं, उनकूं जो भगवान् शापरूप शिक्षा दें हैं सो केवल उनको मिश्रभाव मिटायकें शुद्धप्रेमी करवेकेलियेही समझनों।

कठि० समास—शुद्धस्य भावः शुद्धत्वं, शुद्धत्वे हेतुः शुद्धत्वहेतुः, तस्मै। १९।

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि।

अन्वय—भगवत्तारतम्येन (ते) हि तारतम्यं भजन्ति।

भावार्थ—'**यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं**' या श्रुतिसों मालुम पडै है के भगवान् अनेकरूपवारेभी हैं तासों भगवान् जैसे जैसे स्वरूपभेदको स्वीकार करे हैं, उनके भक्तभी वैसे २ भावके तारतम्यकों ग्रहण करें हैं, याहीसों वृत्रासुरको भाव संकर्षणमें भयो और गजेन्द्रको (इन्द्रद्युम्नको) निर्गुण परब्रह्ममें।

वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा। २०।
वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः।

अन्वय—तेषु वैदिकत्वं (च) लौकिकत्वं कापट्यात् (अस्ति) अन्यथा न (अस्ति) हि वैष्णवत्वं सहजं, अन्यत्र ततः विपर्ययः (अस्ति)।

भावार्थ—'**कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्**' इत्यादि वाक्यनके अनुसार उन भक्तनमें वैदिक कर्मनको अनुष्ठान करनो, तथा लौकिकव्यवहार चलानो, यह दोनो बात कपटसें अर्थात् लोकसंग्रहके लिये होंय हैं, कारणके उनमें स्वभावसोंही भगवद्भक्तपनो होय है, परन्तु मर्यादा जीव और

लौकिक जीवनमें, यासूं विरुद्ध अर्थात् वैष्णवपनो कपटसों और वैदिकपनो स्वभावसूं तथा वैष्णवपनो कपटसूं और व्यवहारासक्ति स्वभावसों होय है । २० ।

संबंधिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे । २१ ।
चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ।
क्षणात्सर्वत्वमायांति रुचिस्तेषां न कुत्रचित् । २२ ।
तेषां क्रियाऽनुसारेण सर्वत्र शकलं फलम् ।

अन्वय—ये संबंधिनः जीवाः तथा (ये) प्रवाहस्थाः अपरे (जीवाः) ते तु सर्वे चर्षणीशब्दवाच्याः, ते सर्वे सर्ववर्त्मसु क्षणात् सर्वत्वं आयान्ति, तेषां रुचिः कुत्रचित् न (भवति), सर्वत्र तेषां क्रियाऽनुसारेण शकलं फलं (भवति) ।

भावार्थ—जो तीनों मार्गनसूं संबंध राखवेवारे जीव हैं वे, और जो केवल प्रवाहमार्गमें आसक्तिवारे अन्य जीव हैं वे सब तो, चर्षणी (भ्रान्त) शब्दसूं कहवे लायक हैं, वे सर्व सबमार्गनमें क्षणमात्रमें सबमार्गनकेसे होय जांय हैं, किन्तु उनकी रुचि कोईभी मार्गमें दृढ नहीं होय है, सबमार्गनमें उन्हें, उनके कर्मनके लायक खंड २ फल मिलै है ।

कठि० समास—संबंधः अस्ति येषां ते । प्रवाहे तिष्ठन्ति ते । वक्तुं योग्याः वाच्याः चर्षणीशब्देन वाच्याः, चर्षणीशब्दवाच्याः । सर्वाणि च तानि वर्त्मानि च सर्ववर्त्मानि, तेषु । २१–२२ ।

प्रवाहस्थान्प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतान् । २३ ।
जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे 'प्रवृत्तिं चेति' वर्णिताः ।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः । २४ ।

अन्वय—स्वरूपांगक्रियायुतान् प्रवाहस्थान् (अहं) प्रवक्ष्यामि, 'प्रवृत्तिं च' इति वर्णिताः ते सर्वे जीवा हि आसुराः (सन्ति), च अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः द्विधा हि प्रकीर्त्यन्ते ।

भावार्थ—स्वरूप देह क्रियासूं युक्त प्रवाहमार्गीय जीवनकूं मैं कहूंगो, '**प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा**' इत्यादि श्लोकनसों गीताजीमें जिनको वर्णन भगवान्ने कियो है वे सब आसुर (प्रवाही) जीव हैं, और वे जीव अज्ञ और दुर्ज्ञ इन दो भेदनसों दो प्रकारके कहे हैं यह निश्चय है ।

कठि० समास—अज्ञाश्च दुर्ज्ञाश्च . अज्ञदुर्ज्ञाः, अज्ञदुर्ज्ञानां विभेदः, तस्मात् । २३–२४ ।

दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञांस्ताननु ये पुनः ।
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते । २५ ।
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः ।

अन्वय—(ये) भगवत्प्रोक्ताः ते हि दुर्ज्ञाः, ये पुनः तान् अनु, ते अज्ञाः, पुष्टिस्थः प्रवाहे समागत्य अपि तैः (सह) न युज्यते, सः अपि तैः (न युज्यते), यतः कर्मणा तत्कुले जातः (अस्ति) ।

भावार्थ—जो गीतामें भगवान्ने कहे हैं वे जीव दुर्ज्ञ (दुष्टज्ञानवारे) हैं, और जो उन आसुरनको अनुकरण करें हैं वे अज्ञ कहे जाँय हैं, यद्यपि अज्ञ आसुरजीव, आसुर नहीं हैं, तथापि तत्कुलमें प्रसूति होयवेसूं अथवा उनको अनुकरणकरवेसूं वे आसुर कहे जाँय हैं, इन जीवनकी मुक्ति, कैतो सत्संगादिसों

भक्तिद्वारा होय है, अथवा तो संरम्भ भय द्वेष आदि असाधनसाधनद्वारा भगवदनुग्रहसों होय है, यह बात ‘**मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे**’ आदि वचननसों मालुम पडे है, पुष्टिजीव प्रवाहमार्गमें आयकेंभी उनके साथ मिलें नहीं हैं, और मर्यादामार्गीयभी आसुरकुलमें आयके उनके धर्मनसूं मिले नहीं है, कारणके कर्मसों उनके कुलमें जन्म भयो है, सोही श्रीगीताजीमें कही है के ‘**पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते**’।

कठि० समास—न जानन्ति ते—अज्ञाः दुष्टं ज्ञानं येषां ते दुर्ज्ञाः । २५ ॥

इति श्रीपुष्टिप्रवाहमर्यादाव्रजभाषा सम्पूर्णा.

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

सिद्धान्तरहस्यकी टीका ।

श्रावणस्याऽमले पक्ष एकादश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते । १ ।

अन्वय—श्रावणस्य अमले पक्षे एकादश्यां महानिशि भगवता साक्षात् (यत्) प्रोक्तं तद् अक्षरशः उच्यते ।

भावार्थ—सावनके शुक्लपक्षमें और एकादशीकी अर्धरात्रिमें श्रीपुरुषोत्तमभगवान्‌ने जो प्रत्यक्ष कह्यो सो अक्षर २ में कहूं हूं । १ ।

ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधा स्मृताः । २ ।

अन्वय—ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः हि (भवति), दोषाः पंचविधाः स्मृताः ।

भावार्थ—आत्मासहित निज सर्व पदार्थनको भगवानकूं निवेदन करवेसूं सब जीवनके देह और लिंगशरीरयुक्त जीव संबंधी सब दोषनकी निवृत्ति होय है, अर्थात् वे स्वरूपसूं रहेंभी हैं तोभी सेवामें प्रतिबंध नहीं करें हैं, वे दोष, पांच प्रकारके हैं । जैसें—

कठि० समास—ब्रह्मणा सह संबंधः ब्रह्मसंबंधः, तस्य करणं तस्मात् । पंचविधाः येषां ते । २ ।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मंतव्याः कथंचन । ३ ।

अन्वय—लोकवेदनिरूपिताः सहजाः देशकालोत्थाः संयोगजाः च स्पर्शजाः कथंचन (हरिसेवायां प्रतिबन्धकाः) न मन्तव्याः ।

भावार्थ—लोक और वेदमें कहे, अहंताममतादिरूप सहज, अंगवंगादि दुर्देशमें जन्मादि भयेसों देशोत्थ, कलियुगदुर्मुहूर्तादिमें जन्म होयवेसों कालोत्थ, मनके संयोगसों भये मानसिक दुष्क्रियारूप संयोगज, तथा स्पर्शजदोष, निवेदनके अनंतर सेवामें प्रतिबन्धक कभी न मानने चहियें ।

कठिनांश समास—सह जाताः सहजाः । देशकालाभ्यां उत्थाः देशकालोत्थाः । ३ ।

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् । ४ ।

अन्वय—अन्यथा सर्वदोषाणां निवृत्तिः कथंचन न (भवति), तस्मात् असमर्पितवस्तूनां वर्जनं आचरेत् ।

भावार्थ—भगवन्निवेदन किये विना पूर्वोक्त दोषनकी निवृत्ति कोई तरहसूंभी नहीं होय है, तासूं दोषनिवृत्ति होयवेकेलिये भगवानके अनिवेदित पदार्थनकूं अपने उपयोगमें न ले ।

कठि० समास—असमर्पितानि च तानि वस्तूनि च असमर्पितवस्तूनि तेषाम् । ४ ।

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणम् । ५ ।
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ।

अन्वय—(भक्तः) समर्प्य एव निवेदिभिः (पदार्थैः) सर्वं कुर्यात् इति स्थितिः (अस्ति), देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणं न मतं । तस्मात् सर्वकार्ये आदौ सर्ववस्तुसमर्पणं (कर्तव्यं) ।

भावार्थ—तासों भगवद्भक्त समर्पण करके और निवेदित पदार्थनसूंही सब कार्य करै यह पुष्टिमार्गकी मर्यादा है, देवदेव श्रीभगवानकूं अर्धभुक्त समर्पण संमत नहीं है, तासूं सर्वकार्यमें आदिमें समग्रवस्तुकोही श्रीहरिकूं अर्पण करै (अर्द्धभुक्तको नहीं),

कठि० समास—निवेदनं निवेदः, निवेदः, अस्ति येषां ते निवेदिनः तैः । सामि भुक्तं सामिभुक्तम् । सर्वं च तत् कार्यं च सर्वकार्यं, तस्मिन् । ५ ।

दत्ताऽपहारवचनं तथा च सकलं हरेः । ६ ।
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।

अन्वय—तथा च हरेः सकलं न ग्राह्यं इति दत्तापहारवचनं (तत्) वाक्यं भिन्नमार्गपरं मतम् ।

भावार्थ—और तैसेंही भगवानकी निवेदितवस्तु अपने उपयोगमें न लानी इत्यादि जो 'अपि दीपावलोकं मे : नोपयुंज्यान्निवेदितं' एकादशके वाक्य हैं वे वाक्य भक्तिमार्गसों जुदे मार्गके लिये हैं ।

कठि० समास—दत्तस्य अपहारः दत्तापहारः दत्तापहारः न कार्य इति वचनं दत्तापहारवचनं । ६ ।

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति । ७ ।
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ।
गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना । ८ ।
गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—यथा लोके सेवकानां व्यवहारः प्रसिद्ध्यति, तथा समर्प्य एव सर्वं कार्यं ततः सर्वेषां ब्रह्मता स्यात् । सर्वदोषाणां गंगात्वं, च गुणदोषादिवर्णना गंगात्वेन एव निरूप्या स्यात्, हि तद्वत् अत्र अपि ।

भावार्थ—जैसे लोकमें 'सब कार्य स्वामीको निवेदनकरकेंहीं करने' ये सेवकनको व्यवहार प्रसिद्ध है, तैसेही हरिभक्तनकोंभी लौकिक वैदिक सर्व कार्य श्रीहरिकों निवेदन करकेंहीं करने, ऐसें करवेसों कितनेक कालमें सबनकों निर्दोषपनो और समभाव प्राप्त होय है, जैसें अन्यत्र बहते जलके, मलिनता अपवित्रता आदि दोषनकों गंगामें मिलवेसों गंगापनो प्राप्त होय है और उनकी गुणदोषआदिकी कथा, जैसे गंगारूपसों वर्णन करी जाय है, ऐसेंहीं आत्मनिवेदनरूप शरणागतिके अनन्तर जीवके गुणदोषादि, ब्रह्ममें मिलवेसों ब्रह्मरूप होय जाँय हैं ।

कठि० समास—गुणदोषाः आदिः येषां तानि गुणदोषादीनि, तेषां वर्णना गुणदोषादिवर्णना । ७-८ ।

। इति श्रीसिद्धान्तरहस्यव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

नवरत्नकी टीका ।

चिन्ता काऽपि न कार्या निवेदितात्मभिः कदाऽपीति ।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् । १ ।

अन्वय—निवेदितात्मभिः कदा अपि का अपि चिन्ता न कार्या, च भगवान् अपि पुष्टिस्थः इति लौकिकीं गतिं न करिष्यति ।

भावार्थ—जिनने आत्मासहित सर्व आत्मीयवस्तूनको भगवान्कूं अर्पण कियो है, उन्हे कभीभी कोईतरहकीभी चिन्ता न करनी चहिये, क्योंके भगवान्भी अनुग्रहमें स्थिर हैं, तासों अन्य प्रवाहादि लोककीसी गति नहीं करेंगे ।

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः ।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति । २ ।

अन्वय—तादृशैः जनैः निवेदनं तु सर्वथा स्मर्तव्यं, सर्वेश्वरः च सर्वात्मा (भगवान्) निजेच्छातः करिष्यति ।

भावार्थ—उत्तम सेवातत्पर भक्तनके संग निवेदनको स्मरण तो अवश्य करनो, सर्वेश्वर और सबनके आत्मारूप भगवान्, अपनी इच्छासों अथवा अपने स्वीकृत भक्तनकी इच्छासों अपने भक्तनके लौकिक वैदिक सब कार्यनकों सिद्ध करेंगे । यहां निवेदनमन्त्रको न कहकें जो 'निवेदनको' इतनो मात्र कह्यो है तासूं मालुम पड़े है के निवेदनके अर्थांशको विचार तथा स्मरण करते

रहनो येही श्रीआचार्यनको तात्पर्य है । जप तो गौण है । श्रीआचार्यवर्गनकूं [1] तो जप और स्मरण दोनो मुख्य है क्योंकि उनकूं तो शिष्यनकूं मन्त्रभी देनो पड़े है किन्तु वैष्णवनकूं स्मरण मात्र करनो । यदि मन्त्रजपकोही आग्रह हो तो 'स्मर्तव्यं' 'निवेदनं' 'तादृशैः' आदि पद व्यर्थसे हो जांय हैं। जपमें तादृशनके संग रहवेकी कछु आवश्यकता नहीं है । जप तो एकाकीभी करसकै है । और स्मरण तथा विचार तो विना-भगवदीयनके नहीं होय सकै है ।

कठि० समास—निजा चासौ इच्छा च निजेच्छा, तस्याः, अथवा निजानां इच्छा निजेच्छा, तस्याः । २ ।

सर्वेषां प्रभुसंबंधो न प्रत्येकमिति स्थितिः ।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत् ।३।

अन्वय—सर्वेषां प्रभुसंबंधः, प्रत्येकं न इति स्थितिः, अतः अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता, चेत स्वस्य सः अपि (का–चिन्ता)।

भावार्थ—आत्मासहित आत्मीय समग्र पदार्थनकूं श्रीहरिको संबंध समानही है अलग २ नहीं है, तासूं आत्मीयवस्तुनको अपनें, और अपनो आत्मीयवस्तूनमें, विनियोग होय तोभी कहा चिन्ता करनी अर्थात् कोई तरहकी चिन्ता नहीं है । ३ ।

अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना । ४ ।

अन्वय—कृष्णसात्कृतप्राणैः यैः अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् आत्मनिवेदनं कृतं तेषां का परिदेवना ।

भावार्थ—श्रीहरिके अधीन् किये हैं प्राण जिननें ऐसे, जिन-

भक्तननें आत्मनिवेदन कियो है, उनकूं कौनसी चिन्ता है अर्थात् उन्हे कोई तरहकी चिन्ता नहीं है ।

कठि० समास—कात्स्न्र्येन कृष्णाय प्रतिपादिताः इति, कृष्णसात्कृताः प्राणाः यैः ते तैः । ४ ।

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः । ५ ।

अन्वय—निवेदने, श्रीपुरुषोत्तमे चिन्ता त्याज्या, तथा विनि-योगे अपि सा त्याज्या हि हरिः स्वतः समर्थः ।

भावार्थ—'मेरो निवेदन श्रीहरिने स्वीकार कियो के नहीं' ऐसें श्रीपुरुषोत्तमेंभी चिन्ताको परित्याग करनो तथा कदाचित् लौकिककार्यादिमें दूसरेको आश्रय लेवेसों अन्यको विनियोग होय तोभी चिन्ताको त्याग करनों क्योंके श्रीहरि जीवके साधनकी अपेक्षा न राखकें स्वयं समर्थ हैं ।

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्साक्षिणो भवताऽखिलाः । ६ ।

अन्वय—यस्मात् (जीवः) (अथवा हरिः) पुष्टिमार्गस्थितः (तस्मात्), हरिः लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिष्यति, (तस्मात्) (लोकवेदकर्मसु) अखिलाः साक्षिणः भवत ।

भावार्थ—जासों जीव अथवा प्रभु अनुग्रहमार्गमें स्थित हैं तासोंश्रीहरि लोक और वेदमें आसक्ति न करावेंगे, तासों लोकवेदके कार्य साक्षिमात्र रहकें करने चहियें । ६ ।

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञाऽबाधनं वा हरीच्छया ।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम् । ७ ।

---

१. अन्तर्णिजन्तमिदं रूपम् अनु०

अन्वय—गुरोः आज्ञाऽबाधनं (यथास्यात्तथा) सेवाकृतिः, वा हरीच्छया (सेवाकृतिः), अतः सेवापरं चित्तं विधाय सुखं स्थीयताम् ।

भावार्थ—गुरुकी आज्ञानुसार सेवा करनो अथवा सामग्री-आदिके विषयमें जो प्रभुकी विशेष इच्छा होय तो प्रभुइच्छानुसारही करनो, ऐसें गुरुकी आज्ञाके अबाधमें वा बाधमें प्रभुसेवामें चित्तकूं तत्पर करकें सुखसूं रहनो ।

कठि० समास—आज्ञायाः अबाधनं आज्ञाबाधनं । हरेः इच्छा हरीच्छा तया । सेवायां परं सेवापरं । ७ ।

चित्तोद्वेगं विधायाऽपि हरिर्यद्यत्करिष्यति ।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् । ८ ।

अन्वय—चित्तोद्वेगं विधाय अपि हरिः यत् यत् करिष्यति, (तत्-तत्) तस्य तथ एव लीला इति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् ।

भावार्थ—मनमें उद्वेग करकेंभी 'श्रीहरि जो जो करें सो सो सब उनकी वैसीही लीला (क्रीडा) है' यह मानकें चिन्ताको जल्दी परित्याग करनो । ८ ।

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः । ९ ।

अन्वय—तस्मात् सर्वात्मना नित्यं मम श्रीकृष्णः शरणं (इति) सततं वदद्भिः एव स्थेयं इति एव मे मतिः ।

भावार्थ—तासों 'सबतरहसों सर्वदा मेरे श्रीकृष्णही रक्षा करवेवारे हैं' ऐसें सदा कहतेही रहनों येही मेरी मति है ॥ ९ ॥

। इति श्रीनवरत्नव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

व्रजभाषामें

अंतःकरणप्रबोधकी विवृति ।

———:०:———

अंतःकरण मद्वाक्यं सावधानतया श्रृणु ।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् । १ ।

अन्वय—हे अंतःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु, कृष्णात् परं वस्तुतःदोषवर्जितं दैवं न अस्ति ।

भावार्थ—हे अंतःकरण! मेरे वाक्यकूं तू सावधान होयके सुन, कृष्णसूं दूसरो वास्तवमें दोषरहित देवता नहीं है ।

कठि० समास—अवधानेन सहितं साऽवधानं, तस्य भावः सावधानता, तया । १ ।

चाण्डाली चेद्राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।
कदाचिदपमाने वा मूलतः का क्षतिर्भवेत् । २ ।

अन्वय—चाण्डाली चेत् राजपत्नी जाता, च राज्ञा मानिता कदाचित् अपमाने (सति) वा मूलतः का क्षतिः भवेत् ।

भावार्थ—चाण्डाली जो राजाकी रानी होय, और राजाने दूसरी रानीन करतें वाकूं अधिक मानी होय, और फिर कोई-समय वाहीके अपराधसूं वाको अपमान भयो होय, तो राजपत्नीपनेमें कहा हानि भई? अर्थात् कछु नही, ऐसेंहीं हे अंतःकरण! कदाचित् प्रभु, फल देयवेमें विलंबभी करैं तथापि अंगीकारमें कोईतरहकी हानि नहीं है, तासूं चिन्ता नहीं करनी । २ ।

समर्प्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः ।
का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् । ३ ।

अन्वय—अहं समर्पणात् पूर्वं किं सदा उत्तमः स्थितः ? मम अधमता का भाव्या ? यतः पश्चात्तापः भवेत् ।

भावार्थ—में, समर्पणके पूर्वमें कहा सदा उत्तमही हो ? तासूं फलविलंबमेभी मेरी हलकावट कहा विचारनी, जासूं पश्चात्ताप होय । अर्थात् फलविलंबकी दशामेभी '**में पहलेसूं तो अच्छो हूं**' यों विचारके अपनो **हलकोपन न विचारनो** और पश्चात्तापभी न करनो । ३ ।

सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति ।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् । ४ ।

अन्वय—विष्णुः (श्रीहरिः) सत्यसंकल्पतः अन्यथा तु न करिष्यति, (तस्मात्) सततं आज्ञा एव कार्या, अन्यथा स्वामिद्रोहः भवेत् ।

भावार्थ—सर्वत्रव्यापक श्रीहरि सांचेविचारवारे हैं । तासूं फलदेयवेके विषयमें औरतरहसूं तो नहीं करेंगे । तासूं सर्वदा प्रभुकी आज्ञाके अनुसारही सेवा करनी । वैसें नहीं करवेसूं स्वामीको द्रोह होय है ।

कठि० समास—सत्यः संकल्पो यस्य सः सत्यसंकल्पः, तस्मात् । ४ ।

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।
आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे । ५ ।
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया ।
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः । ६ ।

अन्वय—सेवकस्य तु अयं धर्मः (अस्ति) स्वामी स्वस्य करिष्यति, पूर्वं तु गंगासागरसंगमे या आज्ञा जाता, पश्चात् मधुवनेऽपि या जाता, मया देहदेशपरित्यागः तद्द्वयं न कृतं, तृतीयः लोकगोचरः (कृतः) ।

भावार्थ—सेवककौ तो श्रीहरिकी आज्ञा पालन करनो येही धर्म है, प्रभु अपने भक्तको सब कार्य स्वयं करेंगे । पहलें तो गंगासागर-संगमपै जो देहपरित्यागरूप आज्ञा भयी, और पीछें मधुवनमेंभी जो देशपरित्यागरूप आज्ञा भई, मैने देहदेशपरित्यागरूप दोंनों आज्ञा नहीं पालीं । परन्तु तीसरी लोकमें प्रसिद्ध संन्यासग्रहणपूर्वक गृहको परित्यागरूप आज्ञा पाली ।

कठि० समास—गंगा च सागरश्च गंगासागरौ तयोः संगमः, तस्मिन् । तयोः द्वयं तद्द्वयम् । ५-६ ।

पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं नचाऽन्यथा ।
लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन । ७ ।

अन्वय—अहं सेवकः अन्यथा न, तत्र पश्चात्तापः कथं, च कृष्णः लौकिकप्रभुवत् कदाचन न द्रष्टव्यः ।

भावार्थ—में प्रभुको सेवक हूं अन्य जैसो नहीं हूं, तासूं फलमें विलंब होय तौभी पश्चात्ताप क्यों करनो । और श्रीहरिकूं लौकिकराजा आदिकी तरह चलचित्त कभीभी नहीं जाननें चहियें ।

कठि० समास—लोके भवः लौकिकः, लौकिकश्चासौ प्रभुश्च लौकिकप्रभुः लौकिकप्रभुणा तुल्यः लौकिकप्रभुवत् । ७ ।

सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोसि सुखी भव ।
प्रौढापि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे । ८ ।
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा ।

अन्वय—भक्त्या सर्वं समर्पितं, कृतार्थः असि, सुखी भव,

यद्वत् प्रौढा अपि दुहिता स्नेहात् वरे न प्रेष्यते, तथा देहे न कर्तव्यं अन्यथा वरः न तुष्यति ।

भावार्थ—भक्तिसूं आत्मासहित सब अपनी वस्तुनको अर्पण तेने कियो, तासूं तू कृतार्थ है । और पंहेलेंकी तरह सुखी हों । हे अन्तः-करण जैसे कितनेक अज्ञानी पतिके यहां जायवे लायकभी कन्याकों स्नेहसों वाके पतिके यहां नहीं भेजे हैं, तैसें देहत्यागके विषयमें तोकूंभी दिलंब नहीं करनो चहिये । विलंबकरवेसूं प्रभु प्रसन्न नहीं होंयगे ।८।

लोकवच्चेत्स्थितिर्मे स्यात्किं स्यादिति विचारय । ९ ।
अशक्ये हरिरेवाऽस्ति मोहं मागाः कथंचन ।
इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः । १० ।
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यकृतोऽन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ।

अन्वय—(हे अंतःकरण) लोकवत् चेत् मे स्थितिः स्यात् किं स्यात् इति (त्वं) विचारय अशक्ये हरिः एव अस्ति (अतः) कथंचन मोहं मागाः श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य चित्तं प्रति इति हितं वचः, यत् आकर्ण्य भक्तः निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

भावार्थ—हे अंतःकरण अन्यलोककीतरह मेरीभी जो लौकिक-उत्कर्षादिके लिये लोकमें स्थिति होय तो कहा होय, यह तूही विचा-रकर । अर्थात् लौकिक उत्कर्षके लिये प्रभुकी अप्रसन्नता करनी योग्य नहीं है । अशक्य कार्यमें श्रीहरिहीं पुरुषार्थसिद्ध करवेवारे हैं । तासूं कोईतरहकी चिन्ताकूं प्राप्त मत होय । श्रीहरिके दास श्रीवल्लभाचार्यको अंतःकरणके प्रति ये हितकारी (यथार्थ) वचन है जाकूं अच्छी-तरह सुनकें भक्तजन, चिन्तारहित होयजांय हैं । ९—१० ।

। ऐसें श्रीअंतःकरणप्रबोधकी व्रजभाषा सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

विवेकधैर्य्याश्रयकी विवृति ।

—:०:—

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः ।
विवेकस्तु 'हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति' । १ ।

अन्वय—विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये, तथा आश्रयः (रक्ष-णीयः), (अथवा भवति) तु हरिः निजेच्छातः सर्वं करिष्यति (इति) विवेकः ।

भावार्थ—विवेक और धैर्य हमेशां राखने तथा आश्रयभी राखनो । और **'श्रीहरि अपनी इच्छासूंही अथवा अपने भ-क्तनकी इच्छासूं सर्व करेंगे'** याको नाम विवेक है ।

कठि० समास—निजा चासौ इच्छा च, तस्याः निजेच्छातः । किंवा, निजानां इच्छा निजेच्छा ।

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात् ।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च । २ ।

अन्वय—स्वाम्यभिप्रायसंशयात्, प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्, हि तस्य सर्वत्र सर्वं, च सर्वसामर्थ्यं एव ।

भावार्थ—'प्रभुकुं हमारी इच्छित वस्तु देयवेकी इच्छा है के नहीं' ऐसो संदेह होयवेसूं जो प्रार्थनाभी करी जाय तो कहा होय । अर्थात् कछु फल नहीं होय । तासों 'श्रीहरिकूं सर्वत्र सर्व-वस्तु लभ्य हैं' और 'सर्ववस्तुके देयवेकी सामर्थ्यभी है ही' यों मनमें दृढता राखकें सेवा करनो ।

कठि० समास—स्वामिनः अभिप्रायः स्वाम्यभिप्रायः, तस्मिन् संशयः

स्वाम्यभिप्रायसंशयः, तस्मात् । समर्थस्य कर्म सामर्थ्यं, सर्वं च तत्सामर्थ्यं च सर्वसामर्थ्यम् । २ ।

अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् ।
विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादंतःकरणगोचरः । ३ ।
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात् ।

अन्वय—स्वाम्यधीनत्वभावनात् अभिमानः च संत्याज्यः, अंतःकरणगोचरः (इति) चेत् विशेषतः आज्ञा स्यात्, तदा विशेषगत्यादि भाव्यं, तु दैहिकात् भिन्नं (भाव्यम्) ।

भावार्थ—'में स्वामीके अधीन हूं' ऐसी भावनासूं अभिमानकोभी वासनासहित परित्याग करनो । श्रीहरि सब भक्तनके अंतःकरणमें विराजें हैं। तासूं यदि सेवादिके विषयमें स्वप्नादिद्वारा कछु विशेष आज्ञा होय तो लौकिक कार्यके सिवाय सेवा सामग्री आदि, प्रभुकी आज्ञाके अनुसार करनी चहियें ।

कठि० समास—स्वामिनः अधीनः स्वाम्यधीनः, तस्य भावः स्वाम्यधीनत्वं, तस्य भावनं, तस्मात् । ३ ।

आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा । ४ ।
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते । ५ ।

अन्वय—च आपद्गत्यादिकार्येषु सर्वथा हठः त्याज्यः, सर्वत्र अनाग्रहः (कर्तव्यः) धर्माऽधर्माग्रदर्शनं (कर्तव्यं) अयं विवेकः समाख्यातः, धैर्यं तु विनिरूप्यते ।

भावार्थ—और धनके संकोचकी अवस्थामें जो सेवाके बड़े कार्य आमें उनमें 'कर्जकरकेभी यह करूंगो' ऐसी हठ न करनों । और 'सेवाको परित्यागकरकेभी' हवनादि कार्य करूंगो एसोभी

आग्रह न करनो किन्तु सेवाके अनवसरमें वे कार्य करने तथा श्रुत्युक्त स्मृत्युक्त और भगवद्धर्मके बलाबलको विचारकरकें अपने अधिकारानुसार कार्य करने । ४—५ ।

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा ।
तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्गोपभार्यवत् । ६ ।

अन्वय—आमृतेः सर्वतः सदा त्रिदुःखसहनं धैर्यं, तक्रवद्देहवत् जडवत् गोपभार्यवत् भाव्यम् ।

भावार्थ—'मरणपर्यन्त सबतरहसों और सबसमयमें आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक (परीक्षाकेलिये भगवद्दत्त) 'तीनों तरहके दुःखनको सहनकरनो ' धैर्य कहावे है । देहाध्यासको परित्याग करवेके लिये छाछकीतरह विचार करनो अर्थात् जैसें घीनिकासे पीछें कोईभी छाछमें मोह नही राखे है ऐसें देहमें मोह न करनो । आध्यात्मिक दुःख सहन करते समय जडभरतके धैर्यको विचार करनो । और भगवान्ने परीक्षार्थ दिये दुःखनके भोगसमयमें गोपस्त्रीकीतरह दुःख सहन करनो । अथवा अंतर्गृहगत गोपीनकीतरह भगवद्विरह सहन करनो । ६ ।

कठि० समास—तक्रेण तुल्यं तक्रवत्, तच्चासौ देहश्च तक्रवद्देहः, तेन तुल्यं तक्रवद्देहवत् । भार्याणां समूहः भार्यं, गोपानां मार्यं गोपभार्यं तेन तुल्यं गोपभार्यवत् ।

प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।
भार्यादीनां तथाऽन्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् । ७ ।

१—हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजंगदष्टं देशान्तरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता ।
पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् । १ ।
इत्याख्यायिकाऽत्रानुसंधेया ।

अन्वय—यदृच्छातः चेत् प्रतीकारः सिद्धः आग्रही न भवेत्, भार्यादीनां च अन्येषां च असतः आक्रमं सहेत् ।

भावार्थ—भगवदिच्छासों जो दुःखनको उपाय होय जाय तो दुःख सहन करवेमें आग्रह न करै, और स्त्रीपुत्रादि, बन्धुवर्ग, तथा और सेवकादिने किये अपमानकोंभी सेवानिर्वाहके लिये सहन करै । ७ ।

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत् ।
अशूरेणाऽपि वर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् । ८ ।

अन्वय—स्वयं इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्, स्वस्य असामर्थ्यभावनात् अशूरेण अपि कर्तव्यम् ।

भावार्थ—अपने भोगवेके लिये सर्वविषयनको शरीरवाणीमनसूं परित्याग करै, और 'इन्द्रियनको दमनकरनो मेरी शक्तिसूं बाहर है' ऐसे विचारसूं असमर्थ भये पुरुषकंभी इन्द्रियनको दमन करनो चहिये ।

कठि० समास—कायश्च वाक् च मनश्च कायवाङ्मनः, तेन । समासान्तविधेरनित्यत्वम् ।

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।
एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते । ९ ।

अन्वय—अशक्ये हरिः एव अस्ति, (यतः) आश्रयतः सर्वं भवेत्, अत्र एतत्सहनं उक्तं, अतः आश्रयः निरूप्यते ।

भावार्थ—आपसूं न बनसकै ऐसे कार्यमें श्रीहरिही रक्षक हैं, क्यों के प्रभुके दृढ आश्रयसों सर्वकार्यनकी सिद्धि होय है, यहां यह त्रिदुःखसहनरूप धैर्यको निरूपण कियो, अब आगें आश्रयको निरूपण करें हैं । ९ ।

ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ।
दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । १० ।
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चापि क्रमे कृते ।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वत्र शरणं हरिः । ११ ।

अन्वय—ऐहिके पारलोके च दुःखहानौ तथा पापे, भये (च) कामाद्यपूरणे, सर्वथा हरिः शरणं (अस्ति), (किंच) भक्तद्रोहे, भक्त्यभावे च भक्तैः क्रमे कृते, अपि वा अशक्ये वा सुशक्ये सर्वथा हरिः शरणम् ।

भावार्थ—या लोकसंबंधी और परलोकसंबंधी कार्यमें, तीनप्रकारके दुःखनकी निवृत्ति होयवेमें, अज्ञानसूं बनते पापनके विषयमें, और राज चौर नरकादिके भयमें, तथा मनोरथकी अप्राप्तिमें, सबतरहसूं भक्तके दुःख दूरकरनवारे श्रीहरिही रक्षाकरवेवारे हैं, तथा भक्तनके द्रोहबनवेमें, भक्तिके अभावमें, और भक्तनके अपनो तिरस्कार कियो होय वासमयमेंभी, किंवा अपनसूं न बनतेकार्यमें अथवा अच्छीतरह बनसकतो होय ऐसे कार्यमें, सर्वसमयमें श्रीहरिही रक्षाकरवेवारे हैं ।

कठि० समास—इह भवं ऐहिकं । परलोके भवं पारलौकिकम् । कामादीनां अपूरणं कामाद्यपूरणं, तस्मिन् । १०–११ ।

अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथांऽतेवास्यतिक्रमे । १२ ।
अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् । १३ ।

अन्वय—अहंकारकृते च एव पोष्यपोषणरक्षणे च एव पो-

ष्यातिक्रमणे, तथा अंतेवास्यतिक्रमे, अलौकिकमनःसिद्धौ 'सर्वार्थे हरिः शरणं' एवं सदा चित्ते भाव्यं च वाचा परिकीर्तयेत् ।

भावार्थ—स्वभावके वशहोयकें कोईसमय जो अहंकार कियो होय तामें, औरभी पालन करवेलायक अपने स्त्रीपुत्रादिकी रक्षा-करवेमें, और स्त्रीपुत्रादिकनने अपनो अपराध कियो होय ता समयमें तथा शिष्यादिकनसूं कछू चूक होयगई होय वा समयमें और अलौकिक देहेन्द्रियादिकी प्राप्तिमें, विशेष कहा मनोरथ-मात्रकी सिद्धिमें 'श्रीहरि मेरे रक्षक हैं' ऐसें सदा हृदयमें विचारते रहनो, और मुखसूंभी कहते रहनो ।

कठि० समास—अहंकारेण कृतं अहंकारकृतं तस्मिन् । अलौकिकं च तत् मनश्च अलौकिकमनः (मन इति देहेन्द्रियादीनामुपलक्षणम्) अलौकिकमनसः सिद्धिः अलौकिकमनः सिद्धिः तस्याम् । १२–१३ ।

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च ।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् । १४ ।

अन्वय—अन्यस्य भजनं तत्र स्वतः गमनं एव, च कार्य-मात्रे अपि ततः (अथवा) अन्यत्र प्रार्थना विवर्जयेत् ।

भावार्थ—अन्यदेवनको भजन, तैसेंहीं अपनेआप अथवा कहेसूं उनके शरणजानो, और कोईभी कार्यमें प्रभुसूं अथवा अन्यदेवनसों प्रार्थना करनी इन सबबातनको परित्याग करनो १४ ।

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः । १५ ।

अन्वय—अविश्वासः तु न कर्तव्यः, सः सर्वथा बाधकः (भवति), ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ निर्ममः सन् प्राप्तं सेवेत ।

भावार्थ—प्रभुमें अथवा शरणजायवेमें अविश्वास तो कभी न करनो । क्योंके अविश्वास (अन्वयव्यतिरेकसूं) हानिकारक ही है । ब्रह्मास्त्र और पपीहा पक्षीको विचार करनो । अर्थात् जो अविश्वास करै तो जैसें राक्षसनने हनुमानजीकूं प्रथम ब्रह्मास्त्रसूं बांधे, फिर वाकेऊपर अविश्वासकरके और रस्सी वगेरहसूं बांधे तब ब्रह्मास्त्रने हनुमानजीकूं स्वयं छोड़दीने और राक्षसनकूं लंका-दाहादि अनेक दुःख भोगने पड़े । अथवा जैसें चातक मेघपै विश्वास राखे है तो वाके अविश्वास न करवेसूं मेघभी स्वातिवर्षाद्वारा वाकूं सुखदेय है ; ऐसेंही प्रभुमें अविश्वास सबतरहसूं हानिकरवे-वारो है । तासूं थोड़ो के वहोत जो मिलै तामें सेवा करै । १५ ।

यथाकथंचित्कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् । १६ ।

अन्वय—उच्चावचानि कार्याणि अपि यथाकथंचित् कुर्यात्, वा बहुना प्रोक्तेन किम् ? हरिं शरणं भावयेत् । १६ ।

भावार्थ—लौकिक वैदिक सबतरहके कार्यनकूंभी जैसें बनें वैसें करै, बहोत कहा कहैं केवल 'श्रीहरि मेरे रक्षक हैं' ऐसो विचार करै, । १६ ।

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुस्साध्या इति मे मतिः । १७ ।

अन्वय—एवं, सर्वेषां सर्वदा हितं आश्रयणं प्रोक्तम्, हि कलौ भक्त्यादिमार्गाः दुस्साध्या इति मे मतिः (अस्ति) ।

भावार्थ—यारीतिसूं सदा सबको हितकरवेवारो भगवान्को आश्रय कह्यो । कारणके कलियुगमें चार भेदवारे भक्तिमार्ग कठिनसूं सिद्ध होंय हैं, यह मेरी बुद्धि है । १७ ।

। इति श्रीविवेकधैर्याश्रयटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

कृष्णाश्रयकी टीका ।

——:०:——

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि ।
पाषंडप्रचुरे लोके कृष्ण एवगतिर्मम ॥ १ ॥

अन्वय—कलौ खलधर्मिणि सर्वमार्गेषु नष्टेषु च लोके पाषंडप्रचुरे मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—दुष्ट धर्मवारे या कलियुगमें वेदोक्त सब मार्ग लुप्त होय गये हैं, और लोकभी अतिपाखंडी होयगये हैं, तासों अब मेरे श्रीहरिही रक्षा करवेवारे हैं ।

कठि० समास—खलश्चासौ धर्मश्च खलधर्मः, खलधर्मः अस्ति यस्मिन् खलधर्मी, तस्मिन् । पाषंडः प्रचुरः यस्य सः पाषंडप्रचुरः, तस्मिन् ॥ १ ॥

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ २ ॥

अन्वय—देशेषु, पापैकनिलयेषु सत्पीडाव्यग्रलोकेषु म्लेच्छाक्रान्तेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः (अस्ति) ।

भावार्थ—सब देश पापमात्रके रहवेके प्रधान घर हो गये हैं, और उनके रहवेवारे लोकभी सत्पुरुषनकी पीडाकूं देखकें अधीर होगये हैं, तथा म्लेच्छनने दबायलीने हैं तासूं या समय श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षाकरवेवारे हैं ।

कठि० समास—एके च ते निलयाश्च एकनिलयाः, पापस्य एकनिलयाः पापैकनिलयाः, तेषु । सतां पीडा सत्पीडा, तया व्यग्राः लोकाः येषु ते, तेषु २

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह ।
तिरोहिताधिदैवेषु[1] कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ३ ॥

अन्वय—गंगादितीर्थवर्येषु, इह दुष्टैः एव आवृतेषु तिरोहिताधिदैवेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—या कलिमें दुष्टजननसूं आक्रान्त, गंगादिकूं आदि लेकें उत्तम २ तीर्थनकेभी जब अधिष्ठाता देवगण (किंवा आधिदैविक तीर्थ) तिरोहित होयगये तो अब मेरे श्रीकृष्णही रक्षक हैं ३

अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु ।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ४ ॥

अन्वय—सत्सु अहंकारविमूढेषु. लाभपूजार्थयत्नेषु, पापानुवर्तिषु, मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—सत्पुरुष लोगभी जब अपने लाभ और मानके लिये अनुचित प्रयत्न करवे लगगये, तथा पापको अनुसरण करवे लगे और अहंकारसूं भ्रान्त होगये तो अब मेर श्रीकृष्ण ही रक्षा करवेवारे हैं ।

कठि० समास—लाभश्च पूजा च लाभपूजे, ताभ्यामिति लाभपूजार्थं, लाभपूजार्थं यत्नः येषां ते, तेषु ।

अपरिज्ञाननष्टेषु मंत्रेष्वव्रतयोगिषु ।
तिरोहितार्थवेदेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ५ ॥

अन्वय—मंत्रेषु, अपरिज्ञाननष्टेषु अव्रतयोगिषु तिरोहितार्थवेदेषु (सत्सु), मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—वैदिक अथवा अन्य मंत्र भी जब अज्ञानसूं नष्ट होयगये, और ब्रह्मचर्यादि व्रतरहित पुरुषनके पास रहवेसूं

१ र्थदैवेषु घ पुस्तक, र्थदेवे ग पुस्तक, धिदैवेषु क पुस्तक पाठः

हीन होगये, तथा उनके अर्थ और वेद विस्मृत होय गये हैं तब आज मेरे श्रीकृष्ण ही रक्षा करवेवारे हैं ।

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु ।
पाषंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम । ६ ।

अन्वय—सर्वकर्मव्रतादिषु, पाषंडैकप्रयत्नेषु नानावादविनष्टेषु (सत्सु) मम कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—सब कर्म और व्रत आदि जब नास्तिकनके प्रश्न और वादनसूं नष्ट होगये, तथा दम्भके लियेही होयवे लगगये तो अब श्रीकृष्णही मेरे रक्षक हैं ।

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः ।
ज्ञापिताऽखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम । ७ ।

अन्वय—अजामिलादिदोषाणां नाशकः ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः अनुभवे स्थितः कृष्ण एव मम गतिः ।

भावार्थ—अजामिल आदि जीवनकेभी दोषनकूं दूरकरवेवारे और ताहीसों प्रगटकियो सर्व निजमाहात्म्य जिनने ऐसे, और अनुभवमें आते श्रीकृष्णही मेरे रक्षक हैं । ७ ।

प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत् ।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम । ८ ।

अन्वय—सकला देवाः प्राकृताः (सन्ति) बृहत् गणितानंदकं (अस्ति) हरिः पूर्णानंदः (अस्ति) (अतः) कृष्ण एव मम गतिः ।

भावार्थ—सब देवता भगवच्छक्तिके वशीभूत हैं, और अक्षरब्रह्मभी गिनेभये आनंदवारो है, और श्रीहरि तो पूर्ण आनंदवारे हैं तासूं श्रीकृष्णही मेरे प्राप्त करवेलायक हैं । ८ ।

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः ।

पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम । ९ ।

अन्वय—विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य मम (अधिकारिणः) कृष्ण एव गतिः ।

भावार्थ—विवेक, धैर्य और भक्तिसूं रहित और बहोतकरके पापमेंही आसक्त और दीन, मेरे (अन्य अधिकारीके) श्रीकृष्णही रक्षक हैं ।

कठि० समास—विवेकश्च धैर्यं च भक्तिश्च विवेकधैर्यभक्तयः, ताः आदिर्यस्य तत् विवेकधैर्यभक्त्यादि, तेन रहितः विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितः, तस्य । ९ ।

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत् ।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् । १० ।

अन्वय—(यः) सर्वसामर्थ्यसहितः (च) सर्वत्र एव अखिलार्थकृत्, (तं) शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं अहं विज्ञापयामि ।

भावार्थ—जो सर्वशक्तीनसूं युक्त और देशकालवर्णआश्रमादि सर्व अवस्थामें भक्तनके मनोरथकूं पूर्ण करवेवारे हैं, शरणमें आयेको उद्धारकरवेवारे उन श्रीकृष्णकी मैं प्रार्थना करूं हूं । १० ।

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत्कृष्णसन्निधौ ।
तस्याश्रयो भवेत्कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् । ११ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः कृष्णाश्रयः सम्पूर्णः ।

अन्वय—यः इदं कृष्णाश्रयं स्तोत्रं कृष्णसन्निधौ पठेत्, तस्य कृष्णः आश्रयः भवेत् इति श्रीवल्लभः अब्रवीत् ।

भावार्थ—जो भक्त या कृष्णाश्रयस्तोत्रको, भगवत्संनिधानमें पाठ करै; वाके श्रीकृष्ण आश्रयरूप होय हैं, यह बात श्रीवल्लभाचार्यजीने कही । ११ ।

। इति श्रीकृष्णाश्रयटीका सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

चतुःश्लोकीकी विवृत्ति।

———:०:———

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्याऽयमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन। १।

अन्वय—सर्वदा सर्वभावेन व्रजाधिपः भजनीयः स्वस्य अयं एव धर्मः क्व कदाचन अपि अन्यः न (अस्ति)।

भावार्थ—सर्वसमयमें पति पुत्र धन गृह सब श्रीकृष्णही हैं या भावसूं श्रीव्रजेश्वर श्रीकृष्णकी सेवा करनी चहिये, भक्तनको तो येही धर्म है, देश वर्ण आश्रम आदि कोई अवस्थामें और कोई समयमेंभी अन्य धर्म नहीं है।

कठिनांशको समास—सर्वश्चासौ भावश्च सर्वभावः, अर्थात् सर्वोपि पतिपुत्रगृहादि मम भगवानेवेति आत्मनो भावः। १।

एवं सदा स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभुःसर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्। २।

अन्वय—सदा स्वकर्तव्यं एवं, (हरिः) स्वयं एव करिष्यति, हि प्रभुः सर्वसमर्थः ततः निश्चिन्ततां व्रजेत्।

भावार्थ—[2]सदा भगवदीयनको कर्तव्य पूर्वोक्त प्रकारको है,

१—'भक्तिमार्ग हरेर्दास्यं धर्मोऽर्थो हरिरेव हि। कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद्भवेत्'। या वचनसूं श्रीहरिभक्तनकूं तो हरिसेवा, श्रीहरि, हरिदर्शन, और भगवदीय होनोही क्रमसूं धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष हैं। २ स्म कर्तव्यं ख पाठः।

फलदानादि श्रीहरिको कर्तव्य है, तासूं वे स्वयं करेंगे, कारणके प्रभु कर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ हैं, तासूं ऐहिक पारलौकिक मनोरथनके विषयमें निश्चिन्त होयकें रहनो। २।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि। ३।

अन्वय—यदि श्रीगोकुलाधीशः सर्वात्मना हृदि धृतः, ततः लौकिकैः वैदिकैः अपि अपरं (फलं) किम् (अस्ति) (इति) (त्वं) ब्रूहि।

भावार्थ—हे अधिकारिवर्ग? यदि प्रभु श्रीकृष्णकूं सबतरहसूं हृदयमें धारणकिये, तो फिर तासूं अधिक, लौकिकश्रेयआदि और वैदिकश्रेयआदि फलनसूंभी कहा प्रयोजन है, ये कहो। ३।

अतः सर्वात्मना शश्वद्गोकुलेश्वरपादयोः।
स्मरणं भजनं चाऽपि न त्याज्यमिति मे मतिः। ४।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी सम्पूर्णा।

अन्वय—अतः शश्वत् गोकुलेश्वरपादयोः सर्वात्मना स्मरणं च भजनं अपि न त्याज्यं इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ—अन्य अवतारनकरतें श्रीकृष्णने अपने भक्तनकूं स्वरूपानंदको दान विशेष दियो है तासूं, हमेशां श्रीगोकुलपतिश्रीहरिके चरणनको सर्वात्मभावसूं स्मरण तथा सेवन तथा चरणरज, कभी न छोड़नी यह मेरी बुद्धि है। ४।

। इति श्रीचतुःश्लोकीव्रजभाषा सम्पूर्णा।

———:०:———

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

भक्तिवर्धिनीकी टीका ।

———:o:———

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढे तु स्यात्त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् । १ ।

अन्वय—यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथा उपायः निरूप्यते, बीजभावे दृढे (सति) त्यागात् तु श्रवणकीर्तनात् (भक्तिः प्रवृद्धा) स्यात् ।

भावार्थ—जैसें भक्ति अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त होय, तेसो उपाय बतावें हैं, अनुग्रहसूं भयो प्रेमरूप बीज जब दृढ होय जाय, तापीछे भक्तिमार्गीयसाधननसूं, अन्य साधनको त्याग करवेसूं, तथा श्रवण स्मरण कीर्तनादि करवेसूं, भक्ति प्रवृद्ध होय है ।

कठि० समास—बीजरूपो भावः बीजभावः । श्रवणकीर्तनयोः समाहारः तस्मात् । १ ।

बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।
अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया[1] श्रवणादिभिः । २ ।

अन्वय—बीजदार्ढ्यप्रकारः तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तः (सन्) पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत् ।

भावार्थ—प्रेमरूपबीजके दृढ होयवेको प्रकार तो ये हे के, गृहस्थाश्रममें रहकें अपने वर्णाश्रमयुक्त धर्मनकूं साधन करतो, पूजासूं (प्रेमपूर्वक दर्शन करते सेवा करनो) और श्रवण कीर्तनादिकनसूं श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा करै ।

---

१ पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैरिति समाधिभाषा ।

कठि० समास—दृढस्य भावः दार्ढ्यं बीजस्य दार्ढ्यं बीजदार्ढ्यं तस्य प्रकारः । न व्यावृत्तः अव्यावृत्तः । २ ।

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा[1] ।
ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् । ३ ।
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नाऽपि नश्यति ।

अन्वय—व्यावृत्तः अपि हरौ चित्तं (आसज्य) श्रवणादौ सदा यतेत, ततः प्रेम आसक्तिः च व्यसनं यदा भवेत् (तर्हि) तत् शास्त्रे दृढं बीजं उच्यते, यत् न अपि नश्यति ।

भावार्थ—कदाचित् अशक्तिआदि होयवेसूं जो वर्णाश्रमधर्म न बनसकते होंय तोभी श्रीहरिमें चित्तकूं लगायकें श्रवणकीर्तनादिक करवेमें सदा यत्न करे, तेसें करवेसूं श्रीहरिमें प्रेम, आसक्ति, और व्यसन, जब होंय तो वे सब होनोही शास्त्रमें दृढ बीजभाव कह्यो हैं, जो बीजभाव दुःसंगादि अथवा कालादिकनके बलसूंभी नष्ट नहीं होय है । ३ ।

स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्त्या स्याद्गृहारुचिः । ४ ।
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ।
यदा स्याद्व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि । ५ ।

अन्वय—स्नेहात् रागविनाशः स्यात्, आसक्त्या गृहारुचिः स्यात्, गृहस्थानां (पदार्थानां) बाधकत्वं च अनात्मत्वं भासते, यदा कृष्णे व्यसनं तदा एव (भक्तः) कृतार्थः स्यात्, (इति) हि ।

भावार्थ—प्रभुमें प्रीति होयवेसूं अन्यत्र जगद्वर्ती पदार्थनमें भये स्नेहको नाश होय है, और प्रभुमें आसक्ति होयवेसूं गृहादिकमें

१–अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ।

अरुचि होय जाय है और ताहीसूं गृहवर्ती सर्व पदार्थ 'प्रभुप्रीतिके नाशकरवेवारे हैं' तथा 'प्रभुसंबंधी नहीं हैं' ऐसें दीखवे लगें हैं, जब श्रीहरिमें आसक्ति होतें होतें व्यसन होय जाय है तबही भक्त कृतार्थ कृतकृत्य कह्यो जाय है, यह निश्चय है। ४-५।

तादृशस्याऽपि सततं गृहस्थानं विनाशकम्।
त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थैकमानसः। ६।
लभेत सुदृढां भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम्।

अन्वय—तादृशस्य अपि गृहस्थानं विनाशकं, (तस्मात्) त्यागं कृत्वा तु यः तदर्थार्थैकमानसः (सन्) यतेत्, (सः) सुदृढां सर्वतः अपि अधिकां परां भक्तिं लभेत।

भावार्थ—कृतार्थभये अर्थात् प्रभुके साक्षात्संबंधवारे भक्तको घरमें रहनो प्रभुस्नेहकूं मिटायवेवारो है, तासूं गृहादिको त्यागकरकें जो भक्त, फलरूपा भक्तिकेभी फलरूप श्रीकृष्णमें मनकूं दृढ लगातो भयो यत्न करै तो वह बड़ीगाढी तथा चारोंतरहकी मुक्तिनसूंभी अधिक फलरूपा भक्तिकूं प्राप्त होय।

कठि० समास—स एव अर्थो यस्याः सा तदर्था, तस्याः अर्थः तदर्थार्थः, तद्दर्थार्थे एकं मानसं यस्य सः तदर्थार्थैकमानसः। ६।

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात्तथान्नतः। ७।
अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति। ८।

अन्वय—त्यागे दुःसंसर्गात् तथा अन्नतः बाधकभूयस्त्वं, अतः हरिस्थाने तत्परैः तदीयैः सह स्थेयं, (किंवा) अदूरे वा विप्रकर्षे (स्थेयं) यथा चित्तं न दुष्यति।

भावार्थ—असांप्रदायिक त्यागकरवेमें अदृष्टादिसूं भये दुःसंग तथा असमर्पित आदि अन्नसूं, वेसे प्रभुप्रेमहोयवेमें बहोतसे प्रतिबंध होयवेकी संभावना है, तासूं जहां निरंतर सेवाप्रवाह चलतो होय ऐसे पवित्र वैष्णवतीर्थनमें हरिसेवातत्पर भगवदीयनके संग रहै, यदि ऐसें रहवेमेभी अभिमानादिसूं चित्तमें कोईतरहको दोष आतो होय, तो वहांही अलग पासमें अथवा अति दूर रहै, जासूं चित्त दुष्ट न होय।

कठि० समास—भूयसः भावः भूयस्त्वं, बाधकानां भयस्त्वं बाधकभूयस्त्वम्। तस्मिन् पराः, तत्पराः, तैः। ७-८।

सेवायां वा कथायां वा यस्याऽऽसक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वाऽपीति मे मतिः। ९।

अन्वय—यस्य सेवायां वा कथायां वा दृढा आसक्तिः यावज्जीवं भवेत्, तस्य नाशः क्व अपि न (स्यात्) इति मे मतिः (अस्ति)।

भावार्थ—जा भक्तकी प्रभुसेवामें अथवा प्रभुचरित्रकथामें दृढ आसक्ति जीवनपर्यन्त होय तो वा भक्तको कोईभीदेश अथवा कालमें नाश नहीं होय है, यह मेरी (श्रीवल्लभाचार्यको) बुद्धि है।

कठि० समास—जीवनं जीवः, यावत् जीवः यावज्जीवम्। ९।

बाधसंभावनायां तु नैकान्ते वास इष्यते।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः। १०।

अन्वय—बाधसंभावनायां तु एकान्ते वासः न इष्यते, तु हरिः सर्वतः रक्षां करिष्यति (तत्र) न संशयः (अस्ति)।

भावार्थ—गृहादिछोड़कें हरिस्थानमें रहवेमें यदि कोईतरहसूं प्रभुप्रेममें प्रतिबंध मालुम पड़तो होय तो एकान्तमें वास नहीं करनो चहिये, गृहादिमें रहवेसूं अनेक विघ्न पड़ेंगे ऐसो तर्कभी युक्त नहीं है, क्योंके सर्वदुःखदूरकरवेवारे श्रीकृष्णही अपनेभक्तनकी सबतरहसूं रक्षा करेंगे, यामें कछु संदेह नहीं है। १०।

इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्वं निरूपितम्।
य एतत्समधीयेत तस्यापि स्याद्दृढा रतिः। ११।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्द्धिनी सम्पूर्णा।

अन्वय—इत्येवं गूढतत्वं भगवच्छास्त्रं (मया) निरूपितं, यः एतत् समधीयेत तस्य अपि (हरौ) दृढा रतिः स्यात्।

भावार्थ—या रीतिसूं दुर्लभ है सार जाको ऐसो ये हरिशास्त्र मेंने कह्यो, जो कोई याको अभ्यास करै, वाकीभी श्रीहरीमें गाढी प्रीती होय है।

कठि० समास—गूढं तत्वं यस्य तत् गूढतत्वम्। ११।

। इति श्रीभक्तिवर्द्धिनीव्रजभाषा सम्पूर्णा।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें.

जलभेदकी टीका।

—:०:—

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान्।
भावान्विंशतिधा भिन्नान्सर्वसंदेहवारकान्। १।

अन्वय—हरिं नमस्कृत्य तद्गुणानां विभेदकान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसंदेहवारकान् भावान् वक्ष्ये।

भावार्थ—श्रीहरिकूं नमस्कार करकें श्रीहरिके गुणनकूं जुदे २ दिखायवेवारे, और बीस प्रकारसूं न्यारे २, तथा फलसाधनादिके सर्वसन्देहनकों दूर करवेवारे, ऐसे जीवनके भावन (मनोविकार) कूं में कहूंगो।

कठि० समास—तस्य गुणाः, तद्गुणाः, तान्। सर्वे च ते सन्देहाश्च, तेषां वारकः तान्। १।

गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः।

अन्वय—यावन्तः (भेदाः) जले मताः तावन्तः तु गुणभेदाः (सन्ति) हि।

भावार्थ—'कूप्याभ्यः स्वाहा कुल्याभ्यः स्वाहा' इत्यादि तैत्तिरीयसंहितामें जितने भेद जलके कहेहैं, उतनेंही श्रीहरिके गुणनके भेद हें यह निश्चय है।

गायकाः कूपसंकाशा गंधर्वा इति विश्रुताः। २।
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि संमताः।

अन्वय—गंधर्वा इति विश्रुताः गायकाः रूपसंकाशाः, यावन्त कूपभेदाः तावन्तः ते अपि संमताः ।

भावार्थ—गंधर्व नामसों शास्त्रमें प्रसिद्ध जो हरिगुणगायक हें वे कूपकींतरह समझने, जितने उत्तममध्यमादिभेदसूं कूपनके भेद हैं, तैसे ही उत्तममध्यमादि तथा भक्त अभक्त आदिभेदनसों गायकनकेभी अनेक भेद हैं ।

कठि० समास—कूपैः संकाशाः कूपसंकाशाः । कूपानां भेदाः । २ ।

कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारंपर्ययुता भुवि । ३ ।
क्षेत्रप्रविष्टास्ते चाऽपि संसारोत्पत्तिहेतवः ।

अन्वय—भुवि पारंपर्ययुताः पौराणिकाः कुल्याः प्रोक्ताः, ते च अपि (यदि) क्षेत्रप्रविष्टाः (तर्हि) संसारोत्पत्तिहेतवः ।

भावार्थ—भूतलपैं परंपरायुक्त जो हरिगुणगायक पौराणिक हें वे नहर समझने, अर्थात् जैसे नहरनको जल स्नानपानादिके उपयोगमें आवै हैं तैसेही पौराणिकनके भावकोभी हरिभक्तिमें उपयोग होय है, परन्तु जो कदाचित् वे और गंधर्व नहरकीतरह क्षेत्रमें अर्थात् स्त्री और शरीरआदिमें आसक्त होय जांय तो वे केवल अहंताममतो करायवेवा रहैं,

कठि० समास—पुराणं विदन्ति ते । परंपरायाः भावः पारंपर्यम्, तेन युतः । ३ ।

वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्तसंज्ञिताः । ४ ।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः ।

अन्वय—वेश्यादिसहिताः मत्ता गायकाः गर्तसंज्ञिताः किंच नीचाः गानोपजीविनः तु जलार्थमेव गर्ताः ।

भावार्थ—वेश्याकूं आदि लेकें स्वैरिणी स्त्रीनसूं संगराखवे वारे और मदोन्मत्त जो गायक हैं वे गर्त (आठहजारधनुषप्रमाणके गढहा) कहे हैं, अर्थात् जैसें गर्तको जल सत्पुरुषनके काममें नहीं आवे है, ऐसेही वेश्यालंपट प्रमादी गायकनकोभी भाव सत्पुरुषनकूं ग्रहणकरवे लायक नहीं है, प्रत्युत वह अनिष्टफल देयवेवारो है, जाति और धर्मादिसूं नीचे और गानसूं जीविका चलायवेवारे जो गायक हें वे उच्छिष्ट जलके लिये किये गढेलाकी तरह हैं, अर्थात् जैसे उच्छिष्टको जल कोईके स्पर्शादिके काममेभी नहीं आवै ऐसेही उनको भावभी कछुकामको नहीं है ।

कठि० समास—गर्त इति संज्ञा संजाता येषां ते, । वेश्या आदिर्यासां ताः, ताभिः सहिताः । गानं उपजीवन्ति ते । ४।

ह्रदास्तु पंडिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः ५ ।
संदेहवारकास्तत्र सूदा गंभीरमानसाः ।

अन्वय—भगवच्छास्त्रतत्पराः पंडिताः तु ह्रदाः प्रोक्ताः, तत्र गंभीरमानसाः संदेहवारकाः सूदाः ।

भावार्थ—गीता भागवतादिमें तत्पर ऐसे शास्त्रोत्पन्नबुद्धिवारे विद्वान् जो हें सो ह्रद कहे हैं, अर्थात् जैसे ह्रद (नदीके एक देशको अगाध जलको स्थान-जाकूं औंल कहें हें) को जल जैसे उत्तम है ऐसे उन पंडितनको भावभी उपयोगार्ह० श्रेष्ट है । और वैसे पंडितनमेंभी जो मनके गंभीर और संदेहनके दूर करवेवारे हें वे सुन्दर स्वच्छ और मीठे जलके ह्रद हैं, उनको भाव स्वरूप और गुणसूं उत्तम है ।

कठि० समास—भगवतः शास्त्राणि भगवच्छास्त्राणि, तेषु तत्पराः । ५ ।

सरः कमलसंपूर्णाः प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः । ६ ।
अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ता वेशंताः परिकीर्तिताः ।

अन्वय—प्रेमयुक्ताः तथा बुधाः सरः कमलसंपूर्णाः (१) प्रेम, युक्ताः अल्पश्रुताः बुद्धा वेशंताः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—भगवत्प्रेमसहित और भागवतादि तत्पर जो पंडित हैं सो कमलनसूं भरेभये सरोवर हैं, अर्थात् उनको जल सुगंधपूर्ण है तैसें इनको भावमी प्रेमयुक्त है। और थोडे ज्ञान-वारे और थोडेही प्रेमसूं युक्त जो विद्वान् हैं वे छोटे तलावकी तरह कहे हैं, अर्थात् जैसे छोटे तलावको जल कोई विशेष विघ्नसूं गदलो हो जाय है तैसें ऐसे पंडितनको भावभी कोईक अन्य शास्त्रादिके दुःसंगसूं विकृति होयसके है । ६ ।

कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाल्पश्रुतभक्तयः । ७ ।
योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्तिताः ।

अन्वय—कर्मनकरके शुद्ध और थोडे शास्त्र और भक्तिवारे जो वक्ता हैं, वे छोटेसे तलावकी तरह जानने, जैसे तलैयाको जल थोड़ेही कालपर्यन्त रहसके है ऐसे ही उनको भावभी दुःसंगादिसूं नष्ट होयसके है, और अष्टांगयोग तथा ध्यान (ईश्वरालंबनमात्र) इत्यादिसूं युक्त जो गुण हैं वे वर्षाके जलके समान समझने, जैसें वर्षाको जल सर्वत्र फैलके सबके उपयोगमें आवै है ऐसेंही उनको भावभी सबके उपयोगमें आवै है ।

कठि० समास—योगश्च ध्यानं च योगध्याने, ते आदिः येषां तानि, तैः संयुक्ताः । ७ ।

१—कमलसंपूर्णमिति कदाचित्स्यात्, अनायासेन विवक्षितार्थबोधित्वात् ।

तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्तिताः । ८ ।

अन्वय—तपोज्ञानादिभावेन (संयुक्ताः) तु स्वेदजाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—कायक्लेश, तथा सांख्योक्त ज्ञान तथा तामेंहीं कह्यो अनात्म्यवस्तुनको त्याग, इनसों युक्त जो कर्मी हैं वे पसीनासूं भये जलकी तरह हैं, अर्थात् जैसे स्वेदजल अच्छेव्यवहारमें न आयकें केवल वाकेही शरीरकूं शीतल करै है ऐसें कर्मश्रद्धावारे-नकोभी भाव औरनकूं ग्राह्य न होयके उनकूं ही शुद्ध करै है । ८ ।

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः ।

कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः । ९ ।

अन्वय—अलौकिकेन ज्ञानेन (युक्ताः) कादाचित्काः तु शब्दगम्याः ये हरेः गुणाः (ते) पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ—भगवदनुग्रहसूं प्राप्तभये ज्ञानकरकें युक्त और कचित् (कोईसमयही) बुद्धिमें आये तथा प्रामाणिक पुरुषनके शब्दसूं जानवेमें आये ऐसे जो श्रीहरिके गुण हैं, वे पतच्छब्द (पडवेको शब्द जामे होय ऐसे वर्षाको जल) कहे हैं, अर्थात जैसे वो जल कदाचित् प्राप्य है, तेसें उनके भावभी कदाचित् बुद्धिमें आरूढ होयवेसूं नियमित समयपै ही मिल सकै है । ९ ।

कठि० समास—पततां शब्दः पतच्छब्दः, पतच्छब्दो येषां ते ।

देवाद्युपासनोद्भूताः पृष्वा भूमेरिवोद्गताः ।

अन्वय—देवाद्युपासनोद्भूताः, भूमेः उद्गता इव पृष्वाः ।

भावार्थ—शिवदुर्गाआदि देवतानके अर्चनकरवेसूं उत्पन्न भये जो गुण अथवा भाव हैं सो मानो भूमिमेंसूंही निकसे होंय

ऐसे दीखते ओसके जलकी तरह जानने, अर्थात् जैसे ओसको जल पृथ्वीमेंसूं निकसो नहीं है तथापि वैसो दीखे है, ऐसेंही उपासकनके मावभी उनके वा उनके उपास्य देवताके नहीं हैं भगवान्के ही हैं तथापि उनकेसे दीखे हैं। और वे लोग उन भावनकूं अपनेही मानकें अहंकार करनलगें हैं, तासूं उनको संग करनो योग्य नहीं है।

कठि० समास—देवा आदिर्येषां ते, देवादीनां उपासना, देवाद्युपासनया उद्भूताः।

साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः। १०।
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः।

अन्वय—साधनादिप्रकारेण (युक्तात्) नवधाभक्तिमार्गतः प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पंदमानाः प्रकीर्तिताः।

भावार्थ—अपने २ वर्ण और आश्रममें कह्यो जो अग्निहोत्रादिसाधननको प्रकार तासूंयुक्त जो नवधाभक्तिमार्ग वासूं, जब प्रेमकी पूर्णता होय और वा प्रेमपूर्तिसूं जिनके हृदयमें भगवद्भाव और भगवद्धर्मनको प्रादुर्भाव होय वे निर्झरके जलकी तरह हैं, अर्थात् जैसे निर्झरको जल स्नानपानमें उत्तम है, ऐसें वेभी संग करवेमें प्रशस्त हैं।

कठि० समास—साधनं आदिर्यस्य सः, साधनादेः प्रकारः तेन। नव प्रकारा यस्याः सा, नवधा चासौ भक्तिश्च, नवधाभक्तिरेव मार्गः तस्मात्। स्फुरन्तो धर्मा येषां, ते। १०।

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धिक्षयविवर्जिताः। ११।
स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः।

अन्वय—यादृशाः प्रोक्ताः तादृशाः (यदि) वृद्धिक्षयविवर्जिताः मर्यादैकप्रतिष्ठिता (भवेयुः) (तर्हि) ते स्थावराः समाख्याताः।

भावार्थ—जैसे पूर्वश्लोकमें कह आये वैसे भक्त जो बढघटसूं रहित होंय अर्थात् जिनको भाव सांसरिक विघ्न और कुतर्कनसूं बढतो घटतो न होंय और जो वे मर्यादामेंही एक निष्ठावारे होंय तौ उन्हें सदा स्थिर रहवेवारे जलकीतरह समझने।

कठि० समास—वृद्धिक्षयाभ्यां विवर्जिताः, ते। एके च प्रतिष्ठिताश्च, मर्यादायां एकप्रतिष्ठिताः ते। ११।

अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा। १२।
संगादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि।
निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः। १३।

अन्वय—अनेकजन्मसंसिद्धाः जन्मप्रभृति सर्वदा संगादिगुणदोषाभ्यां भुवि वृद्धिक्षययुताः (किंच) निरन्तरोद्गमयुताः (ये व्याख्यातृगुणाः) ते नद्यः परिकीर्तिताः।

भावार्थ—अनेक जन्मनकरकें अच्छी सिद्धिकूं प्राप्त भये, और जन्मसूं लेकें सदा सत्संग, दुसंग, काल, कर्म, देश, आदिके गुणदोषनसूं वृद्धि और क्षयकूं प्राप्त होते, तथा निरंतर चलते प्रवाहसूं युक्त, एसे जो गुणानुवादकर्तानके गुण हैं उन्हें नदीके जलकी तरह समझनो।

कठि० समास—अनेकानि च तानि जन्मानि च अनेकजन्मानि, तैः संसिद्धाः। संगः आदिर्येषां ते संगादयः, तेषां गुणदोषौ, ताभ्यां। निरंतरश्चसौ उद्गमश्च निरंतरोद्गमः, तेन युताः। १२-१३।

एतादृशाः स्वतंत्राश्चेत्सिन्धवः परिकीर्तिताः ।

अन्वय—एतादृशाः चेत् स्वतंत्राः (तर्हि) सिन्धवः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—पहलें जैसेहि गुण, यदि स्वतंत्र होंय तो वे गुण महानदीनकी तरह कहे हें ।

पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः । १४ ।
जडनारदमैत्राद्यास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।

अन्वय—शेषव्यासाग्निमारुताः जडनारदमैत्राद्याः ये पूर्णाः भगवदीयाः ते समुद्राः प्रकीर्तिताः

भावार्थ—श्रीसंकर्षण, श्रीव्यास, पुराणवक्ता अग्नि पुराणवक्तावायु तथा जडभरत, नारद और मैत्रेयकूं आदिलेकें जो पूर्ण भागवत हैं वे समुद्र कहे गये हैं, अर्थात् उनके भाव वा गुण, अक्षोभ्य गम्भीर तथा नानारत्नोपशोभित हैं । १४ ।

समुद्रमेंभी क्षार और मिष्ट, दो भेद हैं तासूं उनको अलग अलग वर्णन करें हें ।

लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् । १५ ।
वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः षट् प्रकीर्तिताः ।
गुणातीततया शुद्धान्सच्चिदानंदरूपिणः । १६ ।
सर्वानेव गुणान्विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः ।
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् । १७ ।

अन्वय—एके लोकवेदगुणः (किंच) मिश्रभावेन हरेः गुणान् वर्णयन्ति ते क्षाराद्याः षट् समुद्राः प्रकीर्तिताः, (किंच) ये विचक्षणाः गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानंदरूपिणः विष्णोः

सर्वान् एव गुणान् वर्णयन्ति ते अमृतोदाः समाख्याताः तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् ।

भावार्थ—इन्हींमें कितनेक जो भागवत, लोकमिश्र वेदमिश्र तथा गुणमिश्र भावसूं श्रीहरिके गुणनको वर्णन करें वे क्षारकूं आदिलेकें छ समुद्र कहे हैं, तथा जो अलौकिक बुद्धिमान् भक्त, सत्वादिगुणनकूं छोडदेयवेसूं शुद्ध ऐसे, तथा सच्चिदानंदस्वरूप ऐसे, श्रीहरिके सब गुणनकोही वर्णन करें वे अमृतसमुद्र कहे हैं, उनकी वाणीको पान अत्यंत दुर्लभ है ।

कठि० समास—लोकश्च वेदश्च गुणाश्च, तैः । मिश्रश्चासौ भावश्च मिश्रभावः, तेन । गुणेभ्यः अतीताः, तेषां भावः तत्ता, तया । सच्च, चिच्च, आनंदश्च तेषां समाहारः सच्चिदानंदं, तत् रूपं येषां ते तान् । १५–१६–१७ ।

तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम् ।
अजामिलाकर्णनवद्बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् । १८ ।

अन्वय—दूतानां इव तादृशानां वाक्यं क्वचित् वर्णितं, (तथा) अजामिलाकर्णनवत् (तच्छ्रवणमपि) बिन्दुपानं प्रकीर्तितं (तदपि दुर्लभमित्यर्थः) ।

भावार्थ—षष्ठस्कंधमें कहे विष्णुदूतनके वाक्यकी तरह, ऐसे (पूर्वोक्त) भक्तनके वाक्य कहूंकहूं वर्णन करे हें तेसेही अजामिलके सुनवेकी तरह, ऐसे वाक्यनको सुननोभी बिन्दुपान कह्यो है, अर्थात् ऐसे वाक्य तथा उनको सुननो यह दोनो दुर्लभ हैं ।

कठि० समास—अजामिलस्य आकर्णनं अजामिलाकर्णनं, तेन तुल्यं, अजामिलाकर्णनवत् । १८ ।

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा ।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानंदोद्गमकारणम् ।१९।

अन्वय—(तद्वचनैः) यदा रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं, तदा (तद्वाक्पानं) स्वानंदोद्गमकारणं (इतिहेतोः) लेहनं इत्युक्तम् (भवति) ।

भावार्थ—संसार स्नेह, अज्ञान तथा कामक्रोधादिकरवेवारे भावनको, जब ऐसे भक्तनके वचन न करकें सर्वथा नाश होय जाय, तब वह श्रवण लेहन कह्यो जाय है, क्योंके एसो श्रवण भगवदानंदको उत्पन्न करवेवारो है ।

कठि० समास—रागश्च अज्ञानं च ते आदिर्येषां तेच ते भावाश्च रागाज्ञानादिभावाः तेषां । १९ ।

उद्धृतोदकवत्सर्वे पतितोदकवत्तथा ।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चाऽपि तथात्मनः ।२०।

अन्वय—उक्तातिरिक्तवाक्यानि तथा सर्वे उद्धृतोदकवत् (च) पतितोदकवत्, (तेषां) फलं अपि आत्मनः तथा ।

भावार्थ—कहे भये भावनसूं युक्त वाक्य, अथवा उनके कहवेवारे वक्ता ये सब पात्रमें निकासे अथवा धरतीमें पडे जलकी तरह हैं, अर्थात् निकासो जल जैसें पात्रके अनुसार होय है ऐसेंही उनको भावभी उनके अनुसार होय है, और ऐसे वाक्य अथवा भावनको फलभी वैसोही अर्थात् अल्प ही होय है ।

कठि० समास—उक्तात् अतिरिक्तानि उक्तातिरिक्तानि, तानि च वाक्यानि च उक्तातिरिक्तावाक्यानि । २० ।

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावगता भुवि ।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः ।२१।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितो जलभेदः सम्पूर्णः ।

अन्वय—इति रूपतः फलतः एव भुवि नानाभावगताः जीवेन्द्रियगताः विष्णोः गुणाः निरूपिताः ।

भावार्थ—या तरहसूं स्वरूप और फलकरकेंही पृथ्वीमें अनेक भवनकूं प्राप्तभये तथा जीवनके मनमें रहवेवारे जो श्रीहरिके गुण हें सों हमने कहे ।

कठि० समास—जीवानां इन्द्रियं जीवेन्द्रियं तस्मिन् गताः जीवेन्द्रियगताः । २१ ।

। इति श्रीजलभेदव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

पञ्चपद्यनकी टीका ।

श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसा रतिवर्जिताः ।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः । १ ।

अन्वय—श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः (अन्यत्र) रतिवर्जिताः लोकवेदे अनिर्वृताः (ये) श्रवणोत्सुकाः ते मुख्याः ।

भावार्थ—भगवद्भजनरूपरससूं जिनको मन विक्षेपवारो रहतो होय, तथा जो श्रीहरिके सिवाय अन्य पदार्थनमें स्नेह-रहित होंय, और लोक वेदमें सुख न मानते होय और भगव-द्गुणसुनवेमें चाहवारे होंय वे अधिकारी श्रवणमें मुख्य हैं ।

कठि० समास—श्रीकृष्णस्य रसः श्रीकृष्णरसः तस्मिन् विक्षिप्तं मनो येषां ते श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः । १ ।

विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः ।
अर्थैकनिष्ठास्ते चाऽपि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः । २ ।

अन्वय—तु विक्लिन्नमनसः (च) भगवत्स्मृतिविह्वलाः श्रव-णोत्सुकाः ये अर्थैकनिष्ठाः अपि ते मध्यमाः ।

भावार्थ—और अच्छीतरह सरसहृदय तथा भगवानके-स्मरणसूं विह्वलरहनवारे और हरिगुणसुनवेमे उत्साह राखनवारे जो अधिकारी मोक्षादिप्रयोजनमें विशेषनिष्ठावारेभी होंय वे मध्यम कहे हैं ।

कठि० समास—विक्लिन्नं मनो येषां ते० । अर्थे एव एका निष्ठा येषां ते अर्थैकनिष्ठाः । २ ।

[१]निःसंदिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।
तत्त्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चाऽन्यथा । ३ ।
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्तिताः । ४ ।

अन्वय—ये कृष्णत्वं निःसंदिग्धे सर्वभावेन विदुः तु आवेशात वा निरोधात् विकलाः च अन्यथा न, तु ये केचित् । कदाचित् पूर्णभावेन पूर्णार्थाः तु सर्वदा न (किंच) अन्यासक्ताः ते अधमाः परिकीर्तिताः ।

भावार्थ—जे अधिकारी सदानन्द श्रीकृष्णके स्वरूपकूं निःसन्देह होयके सब तरहसूं जाने हैं, और भगवान्के आवेशसूं । किंवा प्रपंचविस्मृतिपूर्वक श्रीहरिमें आसक्ति होयवेसूं विह्वल हैं किन्तु औरतहसूं विह्वल नहीं, तथा कोई एक परिमित बखतही भगवद्भावसूं कृतार्थ रहें, सर्वदा वैसें न रहें, और अन्य गृहा-दिकमें आसक्तिवारे होंय वे अधिकारी तीसरी कक्षाके हैं ।

कठि० समास—पूर्णश्चसौ भावश्च० । पूर्णा अर्था येषां ते० । अन्येषु आसक्ताः । ३-४ ।

अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।
देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः । ५ ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि सम्पूर्णानि ।

---

१ यह एक श्लोक कदाचित् प्रथमश्लोकके संग होय, अर्थानुसंधानसूं ऐसो संदेह होय हैं ।

अन्वय—(ये) मर्त्याः देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्मप्रकारतः श्रवणादिषु अनन्यमनसः ते उत्तमाः ।

भावार्थ—जो अधिकारिपुरुष श्रवणादिभक्तिमें देश, काल; द्रव्य, कर्ता, मंत्र तथा कर्म इनके प्रकारसूं विचलित हृदय न होंय वे उत्तम अधिकारी हैं, अर्थात् जो देशकालादिके मोहमें पडके भगवद्गुणश्रवणादिको परित्याग न करै वह उत्तमाधिकारी ।

कठिनांशको समास—देशश्च कालश्च द्रव्यं च कर्ता च मंत्रश्च कर्म च एतेषां इतरेतरद्वंद्वः देशकालद्रव्यकर्तृमंत्रकर्माणि, तेषां प्रकारः देशकालद्रव्य-कर्तृमंत्रकर्मप्रकारः, तस्मात्० । ५ ।

। इति श्रीपंचपद्यव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

संन्यासनिर्णयकी टीका ।

पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः । १ ।
कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालतः ।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद्विचारणा । २ ।

अन्वय—पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागः विचार्यते, सः विशेषतः भक्तौ (च) ज्ञाने (इति) मार्गद्वितये प्रोक्तः, कर्म-मार्गे कलिकालतः सुतरां न कर्तव्यः, अतः भक्तिमार्गे आदौ कर्तव्यत्वात् विचारणा (क्रियते) ।

भावार्थ—पश्चात्तापके दूरहोयवेके लिये संन्यासको विचार करें हैं, वह परित्याग (संन्यास) बहोत करकें भक्ति और ज्ञान इन दो मार्गनमें अपेक्षित होयवेसूं कह्यो है, कर्ममार्गमें तो अभी कलिकाल होयवेसूं कभी न करनो चाहिये, तासूं भक्ति-मार्गमें प्रथम करनो चहिये अतएव त्यागको विचार करें हैं १—२

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यश्चेत्स नेष्यते ।
सहायसंगसाध्यत्वात्साधनानां च रक्षणात् । ३ ।
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः ।

अन्वय—श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं सः कर्तव्यः (इति) चेत्, न इष्यते, (कुतः) सहायसंगसाध्यत्वात् च साधनानां रक्षणात् च अभिमानात् (एवं) तद्धर्मैः विरोधतः (स न कर्तव्यः) ।

भावार्थ—श्रवणादिभक्ति अच्छीतरह होय सके, याके, लिये परित्याग करनो जो ऐसें कहते हो तौभी ठीक नहीं, कारणके श्रवणादिककूं अपनेसमान सहायद्वारा सिद्ध होयवेकी योग्यता है, तथा साधननकी रक्षा करनी चहिये, (सोभी संन्यासमें बने नहीं) तथा अभिमान होयवेसूं, ऐसेंहीं संन्यासधर्मनसूं भक्तिको विरोध है तासूं भक्तिके अर्थ तो त्याग नहीं करनो चहिये।

कठि० समास—श्रवणादेः प्रसिद्धिः, तस्यै। सहायानां संगः सहायसंगः तेन साधत्वं सहायसंगसाध्यत्वम्। तस्मात्० ॥ ३ ॥

गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ॥ ४ ॥
अग्रेऽपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा।
स्वयं च विषयाक्रान्तः पाषंडी स्यात्तु कालतः ॥ ५ ॥
विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः ॥ ६ ॥

अन्वय—गृहादेः बाधकत्वेन यदि साधनार्थं (सः) (तर्हि) तथा (न कर्तव्यः) (यतः) अग्रे अपि तादृशैः एव संगो भवति अन्यथा न, तु कालतः विषयाक्रान्तः स्वयं च पाषंडी स्यात् (किंच) विषयाक्रान्तदेहानां हरेः आवेशः सर्वथा न, अतः अत्र भक्तौ साधने त्यागः सुखावहः न एव।

भावार्थ—गृहादिक भगवदासक्तिके साधनमें बाधक हैं सो मानके जो साधनसंपत्तिके लियेही त्याग करो तो भी ठीक नहीं, क्योंके संन्यासलिये पीछें भी हरिस्नेहरहितनको संग होयवेकी विशेष संभावना है, भक्तसंग होयवेकी नहीं, और

कलिकालके बलसूं धीरे धीरे विषयनमें फसतो आपभी पाषंडी होय जाय, और विषयमें फसे हैं देहेन्द्रियादिक जिनके ऐसे पुरुषनमें श्रीहरिको प्रवेश सर्वथा नहीं होय है, तासूं या समयमें भक्तिमार्गमें साधनसंपत्तिके लिये संन्यास लेनो सुखदेवेवारो नहीं है यह निश्चय है।

विरहानुभवार्थं तु परित्यागः सुखावहः।
स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा ॥ ७ ॥

अन्वय—विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते, च सः वेषः (अपि) अत्र स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थं अन्यथा न।

भावार्थ—श्रीहरिके विरहको अनुभव होयवेके लिये गृहादिको परित्याग करनो यह तो उत्तम है, और या भक्तिमार्गकी रीतिके संन्यासमें त्रिदंड कोपीनकमंडलुआदि वेषभी, अपने कहाते स्त्रीपुत्रादिकनने किये बंधकूं दूर करवेकेलिये समझनो, और तरहसूं नहीं।

कठि० समास—स्वीयैः बंधः स्वीयबंधः, तस्य निवृत्तिः, तस्यै स्वीयबंधनिवृत्त्यर्थम् ॥ ७ ॥

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ॥ ८ ॥

अन्वय—कौंडिन्यः (च) गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः च साधनं तत् (तदाचरितमेवेत्यर्थः) (किं तत्) भावनया सिद्धः भावः, अन्यत् साधनं न इष्यते।

भावार्थ—मार्यादिकभक्त श्री कौडिन्यऋषि और पुष्टिभक्त

१–आजकाल ऐसे संन्यासकी दुरवस्था प्रत्यक्ष है।

श्रीव्रजभक्त ये दोनो या त्यागासंबंधी भावमें उपदेष्टा गुरु हैं, और उनने कियो सोही साधन है, (यहां उनने किये साधन बहोत हैं उनमें कोनसो ग्रहण करनो, यह शंका होय है ताको उत्तर श्रीआचार्यजी लिखें है के) निरंतर विरह भावनासूं सिद्धभई प्रीतिही साधन है, और साधनकी अपेक्षा नहीं । ८ ।

विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि ।

ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः ॥ ९ ॥

अन्वय—विकलत्वं तथा अस्वास्थ्यं (विरहस्य) प्रकृतिः, (तत्) प्राकृतं न हि, ज्ञानं च गुणाः एवं वर्तमानस्य तस्य बाधकाः ।

भावार्थ—विरहसूं उन्मत्तपनो तथा अपनी प्रकृतिमें न

१–कितनेक भाषाटाकाकार या जगह त्यागके विपयमें कौंडिन्य तथा श्रीव्रजभक्तनकी मर्यादा तथा पुष्टि यह दो भेद लिखकें निर्देश करें हैं, तथापि यह बात मूलसूं तथा श्रीगोंकुलनाथजीकी टीकासूं नहि निकसे है, मूलमें तो 'च, वा' आदि न देयवेसूं स्पष्टही त्यागविषयमें अभेद है और श्रीगोकुलनाथजी यों लिखे हैं के 'तासूं कौंडिन्यऋषिके किये त्यागको तथा पुष्टिमार्गीयत्यागको कितनोक भावसाम्य है तासूं कौंडिन्यऋषिभो गुरू गिने है' या कहवेसूं यह स्पष्ट मालुम पडै हैं के भक्तपनेमें वह भेद रहतेभी यहां त्यागविषयमें तो ऐक्यही इष्ट हैं । तथा **गोपिकानामप्युपदेष्टृत्वाभावेऽपि** या कहवेसूं श्रीव्रजभक्तनकूंभी भावमात्रमें गुरुत्व है न कि दीक्षा गुरुत्वभी, और 'दिष्टया' आदि दशमके श्लोकमें भी भावमात्रको उनसूं प्रवर्तन बतायो है, और यह बात हैं भी युक्त क्योंके 'मनोगतिः' 'मानसी सा' 'सा परानुरक्तिः' इत्यादिवचननसूं तथा इनकी टीकानसूं भावमात्रकूं सेवा वा परभक्तिपनें निकसेहैं और वाहीके गुरु श्रीव्रजभक्त होय सके हैं तासूं जो अविद्वत्पक्षवारे इन वचननके भरोसे श्रीव्रजभक्तनकूं दीक्षागुरुत्वभी लानो चाहेहैं वे सर्वथा भ्रांत हैं। और या मार्गके गूढ शत्रु हैं यह स्पष्ट है । अनुबादकर्ता ।

रहनो ये दोनो विरहकी अवस्था हैं, स्वस्थप्रकृतिकी दशा नही हैं यह निश्चय है, 'सर्व ब्रह्म है' इत्यादिज्ञान तथा गुण ये ऐसी अवस्थामें वर्तमान भक्तके बाधक हैं । ९ ।

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात्संन्यासेन विशेषितात् ।

भावना साधनं यत्र फलं चाऽपि तथा भवेत् । १० ।

अन्वय—संन्यासेन विशेषितात् ज्ञानात् सत्यलोके स्थितिः (भवति) च यत्र (यादृशी) भावना साधनं (तत्र) फलमपि तथा भवेत् ।

भावार्थ—संन्याससूं उत्तमताकूं प्राप्तभये ज्ञानसूं सत्यलोककी गति मिलै है, कारणके जा मार्गमें जैसी भावना साधन होय वासूं फलभी वैसोही मिलै है । १० ।

तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठंत्येव न संशयः ।

बहिश्चेत्प्रकटः स्वात्मा वह्निवत्प्रविशेद्यदि । ११ ।

तदैव सकलो बंधो नाशमेति न चान्यथा ।

अन्वय—तादृशाः सत्यलोकादौ एव तिष्ठंति न संशयः, (भक्तौ तु) चेत् बहिः प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् यदि (पुनः) प्रविशेत्, तदा एव सकलः बंधः नाशं एति च अन्यथा न ।

भावार्थ—संन्यासग्रहणपूर्वक ज्ञानी लोक ब्रह्मलोक आदिमें ही स्थित रहें हैं, परन्तु भक्तिमार्गमें तो जो बहार प्रगट भयो स्वात्मा भगवान् अग्नि जैसे काष्ठमें पुनः प्रवेश करै तैसैं जब भक्तनके अंतः प्रवेश करैं तबही वाके सकल बंधननको नाश होय है, और तरहसूं बंधनाश संभव नहीं है । ११ ।

गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि । १२.

अन्वय—गुणाः तु संगराहित्यात् जीवनार्थं भवन्ति हि ।

भावार्थ—श्रवण कीर्तन आदिमें सदा आते प्रभुके गुण तो, भक्तनके जीवनके लिये हैं, क्योंके प्रभुको संग जहांतक न होय तहांतक भक्तलोग उन श्रीहरिके गुणनकरकें हीं आपनो जीवन राख सकें हैं । १२ ।

भगवान्फलरूपत्वान्नाऽत्र बाधक इष्यते ।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुद्धयते । १३ ।

अन्वय—फलरूपत्वात् भगवान् अत्र बाधकः न इष्यते, (भगवता) स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं (यतः) दयालुः न विरुद्धयते ।

भावार्थ—भक्तिमार्गमें भगवान् फलरूप है, भाव साधन है वा भावके उत्कट होयवेके लिये विरहकी अपेक्षा है, और विरहानुभवके लियेही आचार्यननें त्यागको उपदेश कियो है, तो ऐसी विरहावस्थाके पूर्वही श्रीहरि अपनो स्वरूपदान करदें तो वे बाधक कहावें तासूं कहें है के, श्रीहरि फलरूप हैं तासूं बाधक नहीं होंय हैं, और ऐसे वचनभी नहीं कहें हैं जासूं स्वस्थता होय जाय, क्योंके कृपापे वश हैं तासूं वा भावको विरोध नहीं करें हैं ।

कठि० समास—स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं, स्वास्थ्यहेतुः वाक्यं, स्वास्थ्य वाक्यम् । १३ ।

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिध्यति नान्यथा ।

अन्वय—अयं परित्यागः दुर्लभः प्रेम्णा सिद्ध्यति अन्यथा न (सिद्ध्यति) ।

भावार्थ—याप्रकारको यह भक्तिमार्गीय संन्यास दुर्लभ है, और प्रभु प्रेमसूं ही प्राप्त होय है, तप दान आदि साधननसूं दुष्प्राप है ।

कठि० समास—दुःखेन लब्धुं अशक्यः दुर्लभः ।

ज्ञानमार्गे तु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः । १४ ।
ज्ञानार्थमुत्तराङ्गञ्च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् ।

अन्वय—ज्ञानमार्गे संन्यासः तु ज्ञानार्थं च उत्तराङ्गं (इति) द्विविधः अपि विचारितः पर जन्मशतैः सिद्धिः (स्यात्) ।

भावार्थ—ज्ञानमार्गमें जो संन्यास है सो तो ज्ञान होयवेके लिये तथा ज्ञानभये पीछे ऐसें दोनोही प्रकारको कह्यो है, परन्तु वा दोनो तरहके संन्यास तथा ज्ञानसूं सेंकडान जन्ममें मोक्ष मिलै है, क्योंके गीतामें प्रभुने अपने श्रीमुखसूं ही कही है के '**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते**' बहोत जन्मनके अनंतर ज्ञानवान् मोकूं प्राप्त होंय है ।

कठि० समास—द्वे विधे यस्य सः द्विविधः । उत्तरं च तत् अंगं च उत्तराङ्गम् । जन्मनां शतानि जन्मशतानि, तैः । १४ ।

ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् । १५ ।
अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा ।
पाषंडित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत् । १६ ।
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितम् ।

अन्वय—यज्ञादिश्रवणात् ज्ञानं च साधनापेक्षं मतं, अतः कलौ सः संन्यासः पश्चात् तापाय (भवति) अन्यथा (च) न, च पाषंडित्वं अपि भवेत्, तस्मात् कलिदोषाणां सुतरां प्रबलत्वात् ज्ञाने न संन्यसेत् इति स्थितम् ।

भावार्थ—वेदमें चित्तशुद्धि आदिके लिये निष्कामयज्ञादि करवेकी आज्ञा हैं तासूं ज्ञानभी अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारभी साधनकी अपेक्षा राखे है ऐसो मान्यो है, और वे साधन कलियुगमें बनने मुश्किल हैं तासूं वह विविदिषा दशाको संन्यास पश्चात्तापमात्र फलके लिये है, और विद्वत्संन्यासभी तादीसूं नहीं सिद्ध होय सके है, तथा जो सहसा संन्यास ले तो थोडे दिनमें समयवशसूं पाषंडी होयकें नष्ट होय जाय है, तासूं यासमयमें कलिकालके अनेक दोष अत्यंत प्रबल हैं यह समझकें ज्ञानमार्गमें संन्यास लेनो नहीं, और याहीसूं शास्त्रनमें निषेधभी कियो है । १५-१६ ।

भक्तिमार्गेऽपि चेद्दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते । १७ ।
अत्रारम्भे न नाशः स्याद्दृष्टान्तस्याप्यभावतः ।
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद्बाधः केनाऽस्य संभवेत् ।१८।

अन्वय—भक्तिमार्गे अपि दोषः तदा किं कार्यं इति चेत् (तर्हि) उच्यते, आरंभे दृष्टान्तस्य अपि अभावतः अत्र नाशः न स्यात्, स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् अस्य बाधः केन संभवेत् ।

भावार्थ—भक्तिमार्गमेंभी कलियुगके दोष बाध करैं तो कहा करनो ऐसें जो मनमें विचार होय तो वाकें लिये कहैं हें के कोई ऐसो दृष्टान्त नहीं मिलै है तासूं या भक्तिमार्गीय संन्यासके आरंभमें नाश होयवेकी संभावना नहीं हैं, अपने स्वरूपमें स्थितरहवेके कारणवारे या भक्तिमार्गीय संन्यासकूं प्राप्त होयकें भक्तको वा स्थितिसूं गिरनो कैसें होय सकै है, अर्थात्

अनुग्रह प्राप्त प्रेमरूपा भक्तिही इतनी समर्थ है के वाके आरंभमें किये परित्यागमें कालादिक कोईभी प्रतिबंध नहीं करसकें है ।

कठि० समास—स्वस्मिंस्तिष्ठतीति स्वस्थः, स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं, तस्य हेतुः, तस्मात्० । परित्यागं प्राप्य इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । १७-१८ ।

हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ।
अन्यथा मातरो बालान्न स्तन्यैः पुपुषुःक्वचित् । १९ ।
'ज्ञानिनामपि' वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ।
आत्मप्रदः प्रियश्चाऽपि किमर्थं मोहयिष्यति । २० ।

अन्वय—अत्र हरिः (अपि) बाधां कर्तुं न शक्नोति, अपरे कुतः, अन्यथा मातरः बालान् स्तन्यैः क्वचित् अपि न पुपुषुः ज्ञानिनां अपि (इति) वाक्येन भक्तं न मोहयिष्यति आत्मप्रदः च प्रियः अपि (भगवान्) (भक्तं) किमर्थं मोहयिष्यति ।

भावार्थ—या परित्यागमें स्वयं भगवान्भी प्रेमवशहोयके जब बाधा नहीं करसकैं हैं तो फिर कालादिककी कहा चलाई, यदि श्रीहरिभी अपने भक्तनकूं बाध करते तो फिर लोकमें माताभी अपने बालकनकूं दुधसूं कभीभी पालन नहीं करती, अर्थात् जैसें लोकमें माता अपने बालकनको पालन अपने दुधसूं करैं हैं, किन्तु कभीभी उनकूं दुःख नहीं देसके हैं तैसेही श्रीहरिभी अपने भक्तनके परित्याग करवेमें बाध नहीं करसकें हैं, (याही अर्थकूं स्पष्ट करे हैं) के मार्कंडेयपुराणके '**ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥**' समर्थ ऐसी भगवच्छक्तिरूपा महामाया देवी जो है सो ज्ञानीनके मनकूंभी जबरदस्ती खेंचके मोहमें पटक दे है,

या वचनसूं मालुम पडै है के श्रीहरि केवलज्ञानीनकूं तो मोह करवायदें हैं, परन्तु अपने भक्तकूं मोह नहीं करावेंगे, भगवान् सबकूं अपनो स्वरूप देवेवारे हैं तथा प्रिय हैं, तासूं अपने भक्तनकूं कायके लियें मोह करामेंगे, अथवा 'यह मेरो भक्त आत्मासहित सर्व अर्पण करवेवारो हैं तथा मोकूं अत्यंत प्रिय हैं,' यों जानके क्यों मोह करामेंगे ॥ १९-२० ॥

तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः । २१ ।
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम् ।
संन्यासावरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् । २२ ।

। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः संन्यासनिर्णयः समाप्तः ।

अन्वय—तस्मात् उक्त प्रकारेण परित्यागः विधीयतां, अन्यथा स्वार्थात् भ्रश्यते इति मे निश्चिता मतिः, इति वल्लभेन कृष्णप्रसादेन भक्तौ संन्यासावरणं विनिश्चितं, अन्यथा पतितः भवेत् ।

भावार्थ—कलियुगमें अन्यमार्गीय परित्याग दोषयुक्त हैं तासूं हमारे कहे अथवा 'तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य०' इत्यादिश्लोकनकरके एकादशमें प्रभुने उद्धवजीसूं कहे प्रकार करकें परित्याग करनो, और तरहसूं करे तो भगवदनुग्रहरूप अपने स्वार्थसूं नीचो गिरे हैं, यह मेरो निश्चित बुद्धि है, या रीतिसों श्रीवल्लभाचार्यने श्रीहरिकृपाकरकें भक्तिमार्गमें संन्यासको उत्तम अंगीकार निश्चय कियो, यासूं और तरह जो संन्यासको स्वीकार करै तो कालादिके वश होय है ॥ २१-२२ ॥

। इति संन्यासनिर्णयव्रजभाषा सम्पूर्णा ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

निरोधलक्षणकी टीका ।

यच्च दुःखं यशोदाया नंदादीनां च गोकुले ।
गोपिकानां तु यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित् । १ ।

अन्वय—गोकुले यशोदायाः च नन्दादीनां च यत् दुःखं (आसीत्) तु गोपिकानां यत् दुखं, तत् दुःखं क्वचित् मम स्यात् ।

भावार्थ—श्रीगोकुलमें श्रीव्रजरानी तथा श्रीनंदरायकूं आदिलेकें गोपनकूं तथा औरभो श्रीहरिके संबंधवारेनकूं जा तरहकी विरहवेदना भयी, तथा श्रीगोपीजननकूं जा तरहकी विरहवेदना भयी वैसो विरह कभी मोकूंभी होयगो, अथवा वैसो विरह दुःख मेरे भी देहेन्द्रियादिमें होयगो ? । १ ।

गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान्किं विधास्यति । २ ।

अन्वय—गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनां यत् सुखं समभूत् तत् सुखं किं भगवान् मे विधास्यति ? । १ ।

भावार्थ—श्रीगोकुलमें श्रीगोपीजननकूं, गोपनकूं तथा अन्यव्रजमें रहवेवारे पशुपक्षीनकूं श्रीहरिकी बाललीलादिकनसूं जैसो सुख भयो वैसो सुख प्रभु मोकूं भी देंगे कहा ? । २ ।

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् । ३ ।

अन्वय—वृन्दावने वा गोकुले, उद्धवागमने (सति) यथा सुमहान् उत्सवः जातः तथा मे मनसि कचित् (स्यात्) ।

भावार्थ—श्रीवृन्दावनमें तथा श्रीगोकुलमें जब श्रीउद्धवजी आये वासमयमें श्रीगोपीजननकूं तथा श्रीयशोदादिनकूं जो आनंद भयो वैसो आनंद मेरे मनमेंभी कभी होयगो ? । ३ ।

महतां कृपया यावद्भगवान् दययिष्यति ।
तावदानंदसंदोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ४ ।

अन्वय—महतां कृपया भगवान् यावत् दययिष्यति, तावत् कीर्त्यमानः आनंदसंदोहः, सुखाय हि ।

भावार्थ—श्रीव्रजभक्तनके अनुग्रहसूं श्रीहरि जबतक फलदेयवेकी दया करैं, तबतक अर्थात् साधन दशामेंभी नित्यकीर्तनमें आते आनंदरूप जो प्रभुके गुणानुवाद हैं सोभी आनंद देवेवारे हाेंय हैं यह निश्चय है । ४ ।

महतां कृपया यद्वत्कीर्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् ।५।

अन्वय—महतां कृपया (भक्तकृतं) कीर्तनं यद्वत् सदा सुखदं (अस्ति) तद्वत् लौकिकानां (कीर्तनं) तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् तथा न (भवति) ।

भावार्थ—बडेनके अनुग्रहसूं प्राप्तभयों जो हरिगुणनको कीर्तन, सो जैसें सदा सुखदेवेवारो है, तैसें लोकसूं संबंध राखवेवारे पुरुषनने कियो कीर्तन, सुख नहीं देय है, वामें दृष्टांत दें हैं के जैसें स्निग्धभोजनकरवेवारेकूं रूखो भोजन अच्छो न लगै तैसें ।

कठि० समास—स्निग्धं भोजनं यस्य सः स्निग्धभोजनः, तस्मै रूक्षं स्निग्धभोजनरूक्षं, तेन तुल्यं स्निग्धभोजनरूक्षंवतः (५) .

गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविंदस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः । ६ ।

अन्वय—शुकादीनां यथा गोविन्दस्य गुणगाने सुखावाप्तिः प्रजायते, तथा आत्मनि न एव अन्यतः कुतः ।

भावार्थ—श्रीशुकदेवजीकूं अदिलेकें जितने मुक्तभक्त है उन्हें जैसी सुखकी प्राप्ति श्रीहरिके गुणगायवेमें होंय है, तैसी सुखप्राप्ति स्वरूपज्ञानमें अर्थात् मोक्षमेंभी नहीं होय है और तरह तो कैसे होय । ६ ।

क्लिश्यमानाञ्जनान्दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः । ७ ।

अन्वय—क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा यदा कृपायुक्तः भवेत् तदा हृदिस्थं सर्वं सदानंदं बहिः निर्गतं (स्यात्)

भावार्थ—गुणगान करतें करतें अपने भक्तनकूं अपनी प्राप्तिके लिये अत्यंत क्लेशपाते देखकें श्रीकृष्ण जब कृपायुक्त होंय हैं, तब हृदयमें सदा विराजते सदानंदस्वरूप श्रीनंदनंदन परब्रह्म बाहर प्रकट होंय हैं । ७ ।

सर्वानन्दमयस्याऽपि कृपानंदः सुदुर्लभः ।
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् । ८ ।

अन्वय—सर्वानंदमयस्य अपि कृपानंदः सुदुर्लभः, हृद्गतः (सः) स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः (सन्) जनान् प्लावयते ।

भावार्थ—सर्वप्रकारसूं आनंदस्वरूप ऐसे श्रीप्रभुकोभी कृपारूप आनंद अत्यंत दुर्लभ है, हृदयमें प्राप्तभयो वह भगवत्कृपानंद

जब अपने गुणानुवादनकूं सुनके पूर्ण होय है तब अपने भक्तनकूं वा प्रेमानंदमें मग्न करदे है, यहां धर्म और धर्मीको ऐक्य होयवेसूं कृपाकूं भी आनंदरूप कही है एसें समझनो । ८ ।

तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानंदपरैर्गेयाः सच्चिदानंदता ततः । ९ ।

अन्वय—तस्मात् सदानंदपरैः (अतएव) निरुद्धैः (भागवतैः) सर्वं परित्यज्य सर्वदा गुणाः गेयाः ततः सच्चिदानंदता (भवेत्) ।

भावार्थ—भक्तिमाग सर्वोत्तम है तासूं सदानंद श्रीहरिको आश्रय लेवेवारे और याहीसूं प्रभुने अपनेमें जिनको निरोध करलीनो है ऐसे भगवदीयनकूं सर्व लौकिक वैदिक साधननकूं छोडकें सदा श्रीभगवानके गुणनको गान करनो चाहिये ऐसी-रीतिसूं गुणवान करवेसूं जीवकूं सच्चिदानंदपुनो प्राप्त होय है ।

कठि० समास—सत् च चित् च आनंदश्च एतेषां समाहारः. सच्चिदानन्दं, सच्चिदानंदस्य भावः तत्ता । ९ ।

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते । १० ।

अन्वय—रोधेन निरुद्धः तु निरोधपदवीं गतः अहं (लौकिके) निरुद्धानां रोधाय • ते निरोधं वर्णयामि ।

भावार्थ—अपने भक्तनकूं अपने प्रेममें लगायवेकें आग्रहसूं श्रीहरिने स्वयं, मेरे मनकूं औरपदार्थनकूं भुलायकें अपने चरणारविन्दमें लगाय राख्यो है, और ताहीसूं निरोधरूप फलकूं प्राप्त भयो में, जो लौकिकमें • आसक्त होय रहे हैं उन अधिकारीनके प्रति निरोधको वर्णन करूं हूं, स्त्रीपुत्रादिप्रपञ्चकूं भूलकें प्रभुमें आसक्ति होयवेकूं, निरोध कहें हैं । १० ।

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्त एवाऽत्र मोदमायान्त्यहर्निशम् । ११ ।

अन्वय—ये हरिणा विनिर्मुक्ताः ते भवसागरे मग्नाः, (किंच) ये निरुद्धा ते एव अत्र अहर्निशं मोदं आयान्ति ।

भावार्थ—'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः' इत्यादिभगवद्वचननसूं मालुम पडै के जिनजीवनकी श्रीहरिने नेक उपेक्षा करदीनी है, वे या अहंताममतारूप संसारसागरमें डूब जाँय हें, अर्थात् जन्ममरणादिके प्रवाहमें ही पडेरहें है, और जिन्हें श्रीहरिनें अपने जानकें रोके है अर्थात् अपनाये हैं वे जीव रात्रिदिन या गुणगानादिभक्तिमें आनंदकूं प्राप्त होंय हैं ।

कठि० समास—भव एव सागरः भवसागरः तस्मिन्० । अहश्च निशा च अहर्निशम् । ११ ॥

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै ।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् । १२ ।

अन्वय—संसारावेशदुष्टानां इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि ईशस्य भूम्नः कृष्णस्य वै योजयेत् ।

भावार्थ—अहंता ममतारूप संसारको सबतरहसुं प्रवेश होयवे करकें दोषवारी भई ऐसी इन 'रसना' आदि इन्द्रियनके हितके लिये अर्थात् भगवत्संबंध होयवेसूं शुद्ध होयवेके लिये इन्द्रियनको जिनसूं संबंध रहतो होय उन सर्व वस्तूनकूं सर्वनि-

यन्ता तथा सर्वत्र व्यापक श्रीहरिमें लगावै, तथा इन्द्रियादि-स्वीयवस्तूनको भी श्रीहरिमें विनियोग करै ।

कठि० समास—सम्यक् सरणं संसारः दृढं स्वरूपात् च्यवनमित्यर्थः । संसारस्य आवेशः संसारावेशः, संसारावेशेन दुष्टानि संसारावेशदुष्टानि, तेषाम्० । १२ ।

गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः ।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत्सुखम् । १३ ।

अन्वय—मुरवैरिणः गुणेषु सर्वदा आविष्टचित्तानां संसार-विरहक्लेशौ न स्यातां, हरिवत् सुखं (स्यात्) ।

भावार्थ—मुरनामा दानवके मारनवारे श्रीहरिके गुणानुवादमें जिनको चित्त सदां लगो रहे है उन भक्तनकूं संसार तथा प्रभुको विरह अथवा अपनी प्रियवस्तूको विरह नहीं होय है किन्तु श्रीहरिकी तरह वे भी सर्वदा आनंदमें मग्न रहें हैं ।

कठि० समास—आविष्टं चित्तं येषां ते आविष्टचित्ताः, तेषाम् । संसारश्च विरहक्लेशश्च संसारविरहक्लेशौ । १३ ।

तदा भवेद्दयालुत्वमन्यथा क्रूरता मता ।
बाधशंकाऽपि नास्त्यत्र तदध्यासोपि सिद्ध्यति । १४ ।

अन्वय—तदा दयालुत्वं भवेत् अन्यथा क्रूरता मता, अत्र बाधशंका अपि न अस्ति, (यतः) तदध्यासः अपि सिद्ध्यति ।

भावार्थ—जब या तरहसूं संसार और विरहक्लेश आदिकी निवृत्ति हो जाय, तब श्रीहरिमें दयालुपनो सिद्ध होय है और यदि ऐसें न होय तो अनुग्रह नहीं है ऐसें जाननो, श्रीहरिके गुणगानादि करवेमें कोई तरहकी कालकर्मादिद्वारा हानि भी नहीं होय है क्योंके भक्तकूं देहमेंसूं अहंभाव छूटके 'श्रीहरि मेरे हें में श्रीहरिकोहूं' यह भाव होय जाय है । १४ ।

भगवद्धर्मसामर्थ्याद्विरागो विषये स्थिरः
गुणैर्हरेः सुखस्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित् । १५ ।

अन्वय—भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विषये स्थिरः विरागः (भवति) गुणैः हरेः सुखस्पर्शात् । कर्हिचित् दुःखं न भाति ।

भावार्थ—प्रतिदिन गानकरवेमें आते श्रीहरिके जो ऐश्वर्यादि छ मुख्यधर्म उनके सामर्थ्यसूंहि भक्तकूं विषयनमें दृढ-वैराग्य होय जाय है, और गुगानुवादनके प्रभाव करकें हृदयमें प्राप्तभये श्रीहरिके आनंददायक स्पर्श होयवेसूं कभी कोई तरहके दुःखको मान नहीं होय है ।

कठि० समास—समर्थस्य भावः सामर्थ्यं, भगवतः धर्माः (ऐश्वर्यं, वीर्यं, यशः, श्रीः, ज्ञानं, वैराग्यं,) भगवद्धर्माः, तेषां सामर्थ्यं भगवद्धर्म-सामर्थ्यं, तस्मात्० । १५ ।

एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षं गुणवर्णने ।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः । १६ ।

अन्वय—एवं ज्ञानमार्गात् गुणवर्णने उत्कर्षं ज्ञात्वा, अमत्सरैः च अलुब्धैः सदा (हरेः) गुणाः वर्णनीयाः ।

भावार्थ—या रीतिसूं श्रीहरिके गुणवर्णनमें ज्ञानमार्गसूं अधिकता जानकें ईर्ष्या और लोभसूं रहित भक्तनकूं निरंतर श्रीहरिके गुणानुवादही करने चाहियें ।

कठि० समास—ज्ञानमेव मार्गः, तस्मात्० । नास्ति मत्सरो येषु ते अमत्सराः, तैः । १६ ।

हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि ।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा । १७ ॥
श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः ।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् । १८ ।

अन्वय—हरिमूर्तिः सदा ध्येया हि संकल्पात् (प्रकाशितायां) तत्र (मूर्तौ) सदा दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं, तथा कृतिगती श्रवणं कीर्तनं अपि (भवति) स्पष्टं कृष्णप्रिये पुत्रे रतिः, पायोः मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् ।

भावार्थ—श्रीहरिके स्वरूपको ध्यान सदा करते रहनो क्योंके भावमात्रसूं हृदयमें प्रगट भये वा भगवत्स्वरूपमें देखनो, स्पर्शकरनो, स्पष्ट होय हैं, तथा करनो चलनो श्रवण करनो कीर्तनकरनो, येभी स्पष्ट होय है, श्रीहरिकेप्रिय पुत्रादिमें प्रीतिकरनो, पायुके मलांशकूं छोडकें अन्नादिके बाकी रहे भागकूं शरीरमें प्राप्त करनो । १७-१८ ।

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते ।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः । १९ ।

अन्वय—यस्य वा यदा भगवत्कार्यं स्पष्टं न दृश्यते, तदा तस्य विनिग्रहः कर्तव्यः इति निश्चयः ।

भावार्थ—जिन पुत्रादिकनमें अथवा इन्द्रियादिकनमें जब स्पष्टरीतिसूं भगवत्संबंधी सेवा आदि कोईभी कार्य न दीखते होंय, तो तब उनउनको अच्छीतरह निग्रह करनो यह निश्चय है । अर्थात्—श्रीहरिके सन्मुखनसूं प्रीतिकरनी, उदासीननकुं

नियममें करने और प्रतिकूलनको परित्याग करनो यह क्रम है । १९ ।

पूर्वोक्तबात सदा स्मरण राखनी ताके लिये वाकी सर्वोच्चता बतावे हैं

नातः परतरो मंत्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् । २० ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—अतः परतरः मंत्रः न (अस्ति) अतः परतरः स्तवः न, अतः परतरा विद्या न अतः परात्परं तीर्थं न ।

अन्वय—निरोधके विषयमें यासूं ऊंचो कोई मंत्र नहीं हैं, और यासूं श्रेष्ठ कोइ स्तुतिभी नहीं है तथा यासूं उत्तम कोई विद्याभी नहीं है ऐसेंहीं यासूं परें कोई तीर्थभी नहीं है । २० ।

। इति श्रीनिरोधलक्षणव्रजभाषा सम्पूर्ण भई ।

॥ श्रीहरिः ॥

व्रजभाषामें

सेवाफलकी टीका ।

यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते ।
अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः । १ ।
फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः ।

भावार्थ—यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलं उच्यते, हि, अलौकिकस्य दाने च आद्यः मनोरथः सिद्ध्येत्, वा फलं (सिद्ध्येत्) वा अधिकारः, अत्र कालः नियामकः न ।

भावार्थ—सिद्धान्तमुक्तावलीग्रंथमें जा तरहकी सेवा (मानसी) कह आये हैं ताकी सिद्धि होयवेसूं जो फल होय है सो कहें हैं प्रभु अनुग्रह करकें जो अलौकिक सामर्थ्यको दान करें अर्थात् अपने साथ कामाशनादि क्रीडा आदिको दान करें तो प्रथम मनोरथ (फल) सिद्ध होय है, और जो सहयोग अर्थात् व्रजवासीनकी तरह संग रहवे मात्रको दान करें तो मध्यम फलकी सिद्धी होय है, और जो सेवोपयोगी देहरूप अधिकारको दान करें तो तृतीयफलकी सिद्धि होय है, फलदेयवेमें काल नियामक नहीं है, कोनसो फल कोनकूं देनो याको नियामक भगवदनुग्रह है ।

कठि० समास—तस्याः सिद्धिः तत्सिद्धिः, तस्याम्० । १

उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः । २ ।

अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद्गतिर्न हि ।
यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम् । ३ ।

अन्वय—किं तु उद्वेगः वा प्रतिबंधः वा भोगः बाधकः स्यात्, चेत् भगवतः, सर्वथा अकर्तव्यं (तर्हि) हि गतिः न, वा यथा तत्वनिर्धारः (तथा) विवेकः साधनं मतम् ।

भावार्थ—किन्तु कोईतरहकीभी मनकी घबराट, विघ्न, और भोग, ये तीनो फलमें बाधक हैं, श्रीहरिकूं यदि सर्वथा फलदेयवेको न होय तो फिर कोईतरहको उपाय नहीं है, फिरतो अपनेमें आसुरपनेको जैसो निश्चय होय जाय ताके अनुसारही ज्ञान तथा ज्ञानके साधनको आचरण करनो यह शास्त्रसंमत है और वाकों ज्ञानही साधन है, अर्थात् वो अधिकारी ज्ञानमार्गमें रहै । २–३ ।

बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं तथा परम् ।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा । ४ ।

अन्वय—बाधकानां परित्यागः (कर्तव्यः) भोगे अपि एकं (लौकिकं भोगं) तथा परं निष्प्रत्यूहं, (यतः) महान् भोगः प्रथमे विशते, (किंच) महान् (प्रतिबंधः) सदा ।

भावार्थ—उद्वेग, प्रतिबंध, और भोग, इन तीनो बाधकरने कारणनको सब तरहसूं त्यागकरनो, पर भोगमें लौकिकभोगको परित्याग करनो, तेसें हीं प्रतिबंधमें भी साधारण प्रतिबंधको त्यागकरनो, क्योंके अलौकिकभोग और भगवत्कृत प्रतिबंध ये दोनो त्यागकरवेकूं अशक्य हैं, ताको हेतु बतावें हैं के अलौकिकभोग अर्थात् अलौकिकसामर्थ्य, उत्तम फलमें गिनो जाय है

तासूं त्यागकरवे लायक नहीं हैं और भगवत्कृत प्रतिबंध भी सदा रहे है तासूं त्यागकरवेकूं अशक्य है, अर्थात् एक भोग फल है तासूं, और एक प्रतिबंध प्रभुकृत है तासूं, अत्याज्य है।

कठि० समास—निर्गतः प्रत्यूहों यस्मात् तत्० । ४ ।

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद्बलादेतौ सदा मतौ ।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् । ५ ।

अन्वय—सदा, एतौ (लौकिको भोगः) सविघ्नः अल्पः (च) (साधारण प्रतिबंधः) बलात् घातकः (इति) मतौ, द्वितीये संसारनिश्चयात् सर्वथा चिन्ता त्याज्या ।

भावार्थ—सदा, लौकिक भोग, अधिव्याधि आदि अनेक विघ्ननसूं युक्त है, तथा थोडो है, और साधारण प्रतिबंधभी अपने सामर्थ्यसूं हानिकरवेवारो है तासूं यह दोनो शास्त्रमें परित्याग-करवे लायक माने हैं, और प्रभुके करे प्रतिबंधमें तो संसारको निश्चय होयवेसूं सर्वथा चिन्ताको त्याग करै, क्योंके गीतामें प्रभुने '**क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु**' इत्यादि वाक्यनसूं यह निश्चय करदीनो हे के आसुर जीव सदा संसारमें-ही पड रहें हैं । ५ ।

नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम् ।
अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन्मनोभ्रमः । ६ ।

अन्वय—आद्ये दातृता न अस्ति (इति) ननु, तृतीये गृहं बाधकं, इयं अवश्या भाव्या, अन्यत् सर्वं मनोभ्रमः ।

भावार्थ—जो पहलो उद्वेगरूप प्रतिबंध होय तो समझनो के श्रीप्रभुकूंही फल देववेकी इच्छा नहीं हैं, और तीसरो भोगरूप

प्रतिबंध आवै तो गृह आदिकूं बंधनकरवेवारे समझने यह निश्चय है, या रीतसूं तीनो तरहसूं प्रतिबंध और तीनो तरहके भोग यह जीवके वशमें नहीं हैं, ऐसें विचारनो, यासूं अन्य विचार केवल मनके भ्रम हैं ।

कठि० समास—न वश्या । अवश्या । मनसः भ्रमः मनोभ्रमः । ६ ।

तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलंबयेत् ।
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः । ७ ।
कुसृष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः ।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम् ।

अन्वय—तदीयैः अपि तत् कार्यं, पुष्टौ न एव विलंबयेत् गुणक्षोभे अपि एतत् एव द्रष्टव्यं इति मे मतिः वा अत्र काचित् कुसृष्टिः उत्पद्येत सः वै भ्रमः ।

भावार्थ—भगवत्संबंधी पुरुषनकूंभी फल और प्रतिबंधनको विचार राखनो चहिये, अनुग्रहकरवेमें श्रीहरि कभी विलंब नहीं करेंगे, सत्वादि गुणनकरकें जब कोईतरहको विकार उत्पन्न होय तो वा समयमेंभी 'प्रभुनेही फलदेयवेमें विलंब विचार्यो है' ऐसें समझनों यह मेरी बुद्धि है, याउक्तिमें जो कोईकूं सन्देहादि उत्पन्न होंय तो वो भ्रममात्र है । ७ ।

। इति सेवाफलव्रजभाषा सम्पूर्णा भई ।

श्री कृष्णार्पणमस्तु.

षोडशग्रंथ सम्पूर्ण ।